भाकृअनुप
ICAR

अंक - 16

मृदा दर्पण

वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका

वर्ष : 2024

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो
अमरावती रोड, नागपुर - 440033 (महाराष्ट्र)

अंक-16

मृदा दर्पण

वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका

वर्ष 2024

भा. कृ.अनु. प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो

अमरावती रोड, नागपुर – 440033 (महाराष्ट्र)

मृदा दर्पण 2024

वार्षिक हिंदी कृषि पत्रिका

वर्ष- 2024

संरक्षण एवं प्रकाशन

निदेशक
भा.कृ.अनु. प.- रा. मृ. स. एवं. भू. उ. नि. ब्यूरो
अमरावती रोड, नागपुर

संपादकीय मंडल:

डॉ. एम.एस. रघुवंशी, प्रधान वैज्ञानिक	अध्यक्ष
डॉ. अशोक कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. रोशन लाल मीणा, वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. गोपाल तिवारी, वैज्ञानिक	सदस्य
डॉ. के. के. मौर्य, वैज्ञानिक,	सदस्य
डॉ. अजीतकुमार मीना, एसटीओ	सदस्य
श्री. प्रवीण एस. बुट्टे, एसीटीओ	सदस्य सचिव

मुख्य पृष्ठ संकल्पना

श्री प्रकाश आंबेकर, मुख्य तकनीकी अधिकारी (कला एवं छायाचित्र)

सहायक

श्री राहुल एल.कोल्हे (यंग प्रोफेशनल -I)

संपर्क सूत्र
भा.कृ. अनु. प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो,
अमरावती रोड, नागपुर 440 033, महाराष्ट्र
दुरभाष क्र. : 0712 - 2500386, 2500545, 2500664, 2500226
फैक्स क्र. : 91-0712-2500534

प्रकाशन

-: केवल विभागीय उपयोग हेतु:-

नोट: पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी है,

संस्थान अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मृदा दर्पण
प्राक्कथन

भूमि मानवता के अस्तित्व और समृद्धि तथा समस्त स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों के रखरखाव के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। वहीं भूमि संसाधनों की सीमाएँ सीमित हैं, जबकि दूसरी तरफ मानवीय माँगें लगातार बढ़ रही हैं। जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, भूमि अपरदन और मरुस्थलीकरण, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, तेज से बढता शहरीकरण आदि के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि दुर्लभ होती जा रही है। बढ़ती माँगों के कारण भूमि संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है, जिससे फसल उत्पादन में गिरावट और भूमि की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिये विभिन्न कुषि जलवायु क्षेत्रों में अनुकूल फसलीय चक्रों एवं उनका विविधकिरण को अपनाना, भूमि क्षरण को रोकना, वहीं जैव विविधता की भी रक्षा करना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना, विकासशील देशों के सामने वर्तमान में मौजूद अनेक चुनौतियों में से कुछ हैं। भूमि उपयोग नियोजन इन चुनौतियों का सामना करने में मदद करने वाले उपकरणों में से एक है क्योंकि यह हितधारकों द्वारा भविष्य में भूमि और संसाधनों के उपयोग पर बातचीत करने पर केंद्रित है। जीव जगत के कल्याण के लिये विरासत में प्राप्त भूमि संसाधनों का भावी पीढ़ी की धरोहर के रूप में समुचित संरक्षण, प्रबन्धन एवं विकास द्वारा इसके मौलिक स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं अनुकूलता सुनिषित करना जरुरी हो जाता है। इसे देखते हुए, मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन शोधकर्ताओं को स्थायी भूमि उपयोग योजनाएँ विकसित करने हेतु आवश्यक ज्ञान और कौशल से लैस करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

सन् 1976 में, इस ब्यूरो की स्थापना का मुख्य लक्ष्य है - देष एवं राज्यों का विभिन्न पैमानों पर मृदा सर्वेक्षण करना, मृदा सर्वेक्षण हेतु सुदूर-संवेदन तकनीक द्वारा अत्याधुनिक कार्यशैली विकसित करना, विभिन्न मृदा सर्वेक्षण इकाइयों के बीच सामंजस्य स्थापित करना, भिन्न स्तरों पर मृदा सह-संबंधीकरण, मृदा वर्गीकरण, राज्य व जिला स्तर पर मृदा संसाधन मानचित्रण तथा कृषि पारिस्थितिकीय सूचीकरण, मृदा आधारित खोज द्वारा भूमि उपयोग नियोजन, मृदा संसाधनों के संरक्षण हेतु मृदा का आँकलन तथा मृदा गुणवत्ता का प्रबोधन करना। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विषयों से प्राप्त जानकारी का विवेचन तथा भूमि संसाधनों के समुचित प्रबंधन हेतु प्रषिक्षण देना आदि अनेक कार्य सम्मिलित हैं।भूमि उपयोग योजनाएँ तैयार करते समय उन्हें विस्तृत भूमि संसाधन मूल्यांकन डेटाबेस और भूमि उपयोग की स्थल-विशिष्ट आवश्यकताओं का विषयगत ज्ञान प्रदान करने के अलावा, हितधारकों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के साथ उनका एकीकरण भी आवश्यक है।

'मुझे पूरी उम्मीद है कि 'मृदा दर्पण' सभी पाठकों के लिए प्रभावी और कुशल मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग योजना के माध्यम से कृषि उत्पादन के लिए गंभीर खतरा पैदा करने वाली भूमि क्षरण और बदलती जलवायु की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने कौशल को बढ़ाने में बहुत उपयोगी होगा। इस पत्रिका में निहित विभिन्न लेखों के योगदान सें इसे संपादित करके बहुमूल्य इनपुट जोड़ने के लिए संपादक मंडल के सभी सदस्यों का बहुत आभारी हूं। 'मृदा दर्पण' पत्रिका का प्रकाषन सही अर्थों में इसी संकल्प को समर्पित हमारा एक लघु प्रयास है।

- डॉ. नितिन जी. पाटिल, निदेशक
भा.कृ.अनु.प.- रा.मृ. सर्वे. एवं भू.उ.नि.ब्यूरो, नागपुर

सम्पादकीय

कृषि के प्रमुख प्राकृतिक संसाधनों में भूमि या मिट्टी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।इस दृष्टि से मिट्टी की उपजाऊ क्षमता किसी भी राष्ट्र के लिए अत्यधिक महत्त्व रखती है। पृथ्वी पर केवल एक सेंटीमीटर मिट्टी की परत बनने में लाखों वर्ष लग जाते हैंए जबकि हमारे देश में हर वर्ष उपजाऊ मिट्टी कटाव के कारण बह जाती है। इसके साथ ही लगभग 84 लाख टन पोषक तत्व भी नष्ट हो जाते हैं और निरन्तर चुनौती बनी हुई हैं।

भूमि सभी स्थानों पर समान नहीं होती हैं और इसकी बनावट और संरचना समयए स्थान तथा प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। कृषि में भूमि का उपयोग उसकी बनावट और प्रकार पर निर्भर करता है। रेतीली मिट्टी की जलधारण क्षमता और उत्पादन शक्ति अपेक्षाकृत कम होती हैए जबकि चिकनी मिट्टी की जलधारण क्षमता और उत्पादन शक्ति अधिक होती है। इस दृष्टि से भूमि के गुणए उनका वर्गीकरण और सिंचाई की आवश्यकता का ज्ञान कृषि के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

कृषि वैज्ञानिक फसलों और पशुधन पर अनुसंधान करते हुए उनकी मात्रा और गुणवत्ता में सुधार के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं तथा प्रभावी प्रबंधन के वैज्ञानिक तरीकों का विकास करते हैं। साथ हीए वे प्रमुख कृषि उत्पादों को उपभोक्ताओं के लिए पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों में रूपांतरित करने की तकनीकों पर भी अनुसंधान करते हैं। इस पत्रिका में सम्मिलित विभिन्न कृषि एवं सामाजिक विषयों पर आधारित लेखों के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि देश की कृषि के विकास से संबंधित नवीन अनुसंधान और विकसित की जा रही तकनीकें हिंदी भाषा के माध्यम से आम जनता तक पहुँचे। भूमि निबंध का प्रकाशन इसी भावना को साकार करने का हमारा एक छोटा किंतु सार्थक प्रयास है।

हम भूमि निबंध पत्रिका के प्रकाशन हेतु संस्थान के निदेशक के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैंए जिनके मार्गदर्शन और प्रोत्साहन से यह अंक प्रकाशित हो सका। इस अंक के प्रकाशन में संस्थान के विभिन्न विभागोंए प्रभागों एवं क्षेत्रीय केंद्रों में कार्यरत सभी अधिकारियों और कर्मचारियों का मूल्यवान सहयोग प्राप्त हुआ हैए जिसके लिए हम उनके प्रति गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हमें विश्वास है कि भूमि पत्रिका के आगामी अंक और अधिक उपयोगीए समृद्ध तथा आकर्षक सिद्ध होंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति में आप सभी का स्नेहए सहयोग और मार्गदर्शन निरंतर मिलता रहेगा ।-

संपादकीय मंडल
संपादक (मृदा दर्पण)
भा.कृ.अनु.प.- रा.मृ.सर्वे.एवं भू.उ.नि.ब्यूरो, नागपुर

विषय सूची

क्र.स	शीर्षक	पृ.सं
1	**मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना का भारत के कृषि विकास में महत्व** एम.एस रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर के नैताम, अभय षिराले, अशोक कुमार, पी.सी. मोहाराना, एच. एल. खरबीकर,राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल	1-4
2	**मृदा- भू-आकृति में संबंध और इसका महत्व** लाल चंद मालव, बृजेश यादव, अभिषेक जांगिड़, एम. नोगिया, आर. एल. मीणा, आर. पी. शर्मा और बी. एल. मीना	5-8
3	**भारतीय कृषि.पारिस्थितिक क्षेत्रों में फसल पैटर्न एवं पद्धतिया** एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर के नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना, अशोक कुमार, एच.एल. खरबीकर, सिरिसा अडमाला, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल	9-15
4	**बीकानेर संभाग का भूमि संसाधन सूचीकरण और सतत भूमि उपयोग योजना** बी. एल. मीना, आर. पी. शर्मा, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, लाल चन्द मालव, बृजेश यादव, आर. एस. मीणा एवं अभिषेक जांगिड	16-18
5	**विदर्भ क्षेत्र, महाराष्ट्र में भूमि उपयोग योजना हेतु भूमि संसाधन सूची सतत** एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर के नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना, एच.एल. खरबीकर, सिरिसा अडमाला, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल	19-22
6	**गुजरात की मृदायें और उपयुक्त फसलें** शिव पाल सिंह, बी. एल. मीना, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, लाल चन्द मालव, बृजेश यादव एवं सुरेन्द्र सिंह राठौड़	23-24
7	**दक्षिण गुजरात क्षेत्र के लिए सतत कृषि हेतु भूमि संसाधन सूची और भूमि उपयोग योजना** अभिषेक जांगिड़, महावीर नोगिया, बृजेश यादव, आर. एल. मीणा, लाल चन्द मालव, आर. पी. शर्मा एवं बी. एल. मीना	25-27
8	**राजस्थान की मृदायें और उपयुक्त फसलें** शिव पाल सिंह, बी. एल. मीना, आर. पी. शर्मा, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, बृजेश यादव, अभिषेक जांगीड एवं सुरेन्द्र सिंह राठौड़	28-29
9	**PMKSY 2.0 के अंतर्गत सबवाटरशेड प्रबंधन के लिए भूमि संसाधन सूची (बिहार)** एस. के. रेजा, राजेश कुमार, मोहम्मद तारिक, आकृति भारद्वाज, बेनुकंथा दास, मौली पाल एवं एफ. एच. रहमान	30-32
10	**मृदा की उर्वरा शक्ति एवं गन्ने में शर्करा वृद्धि करने हेतु गन्ना फसल अवशेषों की अहम भूमिका** ब्रह्म प्रकाश**,** ओम प्रकाश एवं आनंद प्रकाश नागर	33-37
11	**मृदा शक्ति, कृषि उत्पादन एवं पर्यावरण के संतुलन में पंचतत्वों का महत्व** एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर के नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना, एच.एल. खरबीकर, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल	38-40
12	**सरसों की श्री विधिः वैज्ञानिक खेती से तिलहन आत्मनिर्भरता की ओर** संदीप कुमार',संजय सिंह राठौड़, मोहम्मद हसनैन, उदय शंकर सैकिया, कृष्ण कुमार मौर्य, अरिजीत बर्मन,रवि कुमार एवं दिवाकर रॉय'	41-44
13	**भारतीय कृषि पर रतन टाटा का स्थायी प्रभावः नवाचार और ग्रामीण विकास की विरासत** आर. पी. शर्मा	45-48

14 **भारतीय कृषि में फसल विविधीकरणः अवसर और चुनौतियाँ** 49-51
आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, बृजेश यादव, पी. सी. मोहराना, लाल चन्द मालव, अभिषेक जांगिड, आर. एस. मीणा, आर. पी. शर्मा एवं बी. एल. मीना

15 **मशरुम की खेती एवं मशरुम की उपयोगिता** 52-54
सविता मीणा**,**अजीत कुमार मीना**,** एवं दीपक एस**.** मोहेकर

16 **मृदा अपरदन: कारण**, **प्रकार और मृदा संरक्षण** 55-59
लक्ष्मणनारायण**,**सविता मीणा**,** एवं अजीत कुमार मीना

17 **मृदा की घटती उर्वरता में टिकाऊ खेती का महत्त्व और उपाय** 60-63
रोशन वाकोडे**,** सविता मीणा**,** एवं सुनील बी.एच.

18 **मृदा परीक्षणः उद्देश्य**, **महत्व**, **तकनीक एवं सावधानियां** 64-67
अजीत कुमार मीना**,** एवं लक्ष्मणनारायण

19 **सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग): प्रकार** , **उपयोग एवं कृषि में महत्व** 68-70
अजीत कुमार मीना**,** एवं निर्मल कुमार**,**

20 **महाराष्ट्र: मिटटी में फल उत्पादन के अवसर** 71-75
अभय गेडाम,स्नेहलता चवरे,राहुल कोल्हे, प्रतिक बोरकर एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर. के नैताम एवं अभय शिराले

21 **प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) के साथ कृषि क्षमता की तलाश** 76-78
स्नेहलता चवरे,अभय गेडाम, राहुल कोल्हे, कल्पना घटे, अनंतराज जाधव, प्रतिक बोरकर निहाल ऊके, एम.एस. रघुवंशी एवं रितिक बिस्वास

22 **पांगी का संक्षिप्त विवरणः एक उत्तर-पश्चिम हिमालय क्षेत्र** 79-83
राजेश कुमार मीणा, विकास जून,अशोक कुमार, जया नि. सूर्या' एवं एन. जी. पाटिल

१

मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना का भारत के कृषि विकास में महत्व

एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर. के. नैताम, अभय षिराले, अशोक कुमार, पी.सी. मोहाराना,
एच. एल. खरबीकर, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर440033
भा.कृ.अनु.प.- रा.मृ.स.एवं भू.उ.नि.ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र दिल्ली, आई.ए.आर.आई. कैम्पस, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है और इसकी 60 %से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, और इसीलिए यह देश की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता के लिए अत्यंत आवश्यक है। कृषि उत्पादन को अधिकतम करने और भूमि के सतत उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए मृदा सर्वेक्षण (Soil Survey) और भूमि उपयोग योजना (Land Use Planning) दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में मृदा और भूमि संसाधन बेहद विविध और जटिल हैं, जिससे कृषि प्रबंधन और भूमि विकास के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। मृदा की संरचना, उसकी उर्वरता, और जल धारण क्षमता जैसी विशेषताएँ कृषि की उत्पादकता को सीधे तौर पर प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार, भूमि उपयोग योजना यह सुनिश्चित करती है कि भूमि का विवेकपूर्ण और सतत उपयोग हो, ताकि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतें पूरी की जा सकें।

मृदा सर्वेक्षण (Soil survey) क्या है?

मृदा सर्वेक्षण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से भूमि की मृदा की संरचना, उसकी गुणवत्ता, पोषक तत्वों की उपलब्धता, और उसकी उर्वरता का अध्ययन किया जाता है। मृदा सर्वेक्षण की मदद से यह पता लगाया जाता है कि कौन-सी भूमि किस प्रकार से फसल के लिए उपयुक्त है।

मृदा सर्वेक्षण मुख्यतः निम्नलिखित पहलुओं पर आधारित होता हैः

- **मृदा के प्रकार की पहचान**: मृदा के विभिन्न प्रकारों जैसे बलुई, चिकनी, दोमट इत्यादि की पहचान की जाती है।
- **मृदा की रासायनिक संरचना**: मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, और कार्बन की मात्रा की जाँच की जाती है।
- **जल धारण क्षमता**: मृदा की जल धारण क्षमता का आकलन किया जाता है ताकि यह समझा जा सके कि वह भूमि सिंचाई के लिए कितनी उपयुक्त है।
- **मृदा की उर्वरता**: मृदा की उर्वरता का परीक्षण यह पता करने के लिए किया जाता है कि उसमें कितने पोषक तत्व मौजूद हैं और कौन-सी फसलें उसमें सर्वोत्तम हो सकती हैं।

मृदा सर्वेक्षण का महत्त्व:

भारत में मृदा सर्वेक्षण का विशेष महत्त्व है क्योंकि यह किसानों को उनकी भूमि की प्रकृति और उसकी क्षमता के बारे में सटीक जानकारी मिलती है और इससे किसानों को न केवल उपयुक्त फसलों का चयन करने में मदद मिलती है, बल्कि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक उपाय करने में भी सहायता मिलती है।

मृदा सर्वेक्षण के प्रकार:

भारत में मृदा सर्वेक्षण मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैंः

- **रैपिड मृदा सर्वेक्षण** - यह प्रारंभिक मृदा सर्वेक्षण होता है जिसमें व्यापक स्तर पर भूमि की मृदा का मोटा आकलन किया जाता है। इसका उद्देश्य किसी बड़े भूभाग के मृदा की सामान्य स्थिति और उसकी कृषि उत्पादकता की संभावनाओं का पता लगाना होता है।
- **विस्तृत मृदा सर्वेक्षण**- इस प्रकार का मृदा सर्वेक्षण अधिक विशिष्ट और सूक्ष्म होता है। इसमें मृदा की विभिन्न परतों, उसकी भौतिक और रासायनिक संरचना, जल धारण क्षमता और उर्वरता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- **अल्ट्रा-विस्तृत मृदा सर्वेक्षण**- यह सबसे जटिल और गहन मृदा सर्वेक्षण होता है, जिसका उपयोग परियोजनाओं के लिए किया जाता है। इसमें किसी विशेष भूमि क्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है ताकि उसकी उत्पादकता, पर्यावरणीय संतुलन, और कृषि के लिए सर्वोत्तम उपयोग का निर्धारण किया जा सके।

मृदा सर्वेक्षण की प्रक्रिया:
मृदा सर्वेक्षण कई चरणों में संपन्न होता हैः

- **भूमि का प्रारंभिक अवलोकन**: सर्वेक्षण से पहले क्षेत्र का विस्तृत अध्ययन किया जाता है, जिसमें भूमि की स्थलाकृति, जल निकासी प्रणाली, और भूवैज्ञानिक संरचना को देखा जाता है।
- **मृदा के नमूने एकत्र करना**: सर्वेक्षण के दौरान भूमि के विभिन्न हिस्सों से मृदा के नमूने लिए जाते हैं। इन नमूनों को मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में भेजा जाता है, जहां पर मृदा के पोषक तत्व, पीएच स्तर, और उर्वरता का परीक्षण किया जाता है।
- **मृदा मानचित्रण**: मृदा के विभिन्न गुणों के आधार पर भूमि का मृदा मानचित्र तैयार किया जाता है, जिसमें मृदा के प्रकार और उनकी भौगोलिक स्थिति को दर्शाया जाता है।

मृदा सर्वेक्षण से निम्नलिखित लाभ होते हैंः
कृषि उत्पादन में वृद्धिः सही जानकारी के आधार पर फसल चयन और खेती करने से फसलों की पैदावार में बढ़ोतरी होती है।
खाद का सही उपयोगः मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की जानकारी होने से किसानों को सही मात्रा में खाद और उर्वरक का उपयोग करने में मदद मिलती है।

पर्यावरण संरक्षण: मृदा के संतुलित उपयोग और देखभाल से भूमि की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है, जिससे पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है

भूमि उपयोग योजना के चरण:
भूमि उपयोग योजना एक रणनीतिक प्रक्रिया है जिसे निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता हैः
आधारभूत डेटा संग्रहण भूमि की मृदा संरचना, जलवायु, पारिस्थितिकी, और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों की जानकारी एकत्र की जाती है। इसके लिए मृदा सर्वेक्षण, जलवायु आंकड़े, और जनसंख्या संबंधित आँकड़े उपयोग किए जाते हैं।

भूमि वर्गीकरण भूमि की विशेषताओं के आधार पर उसे विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। जैसे कि कृषि भूमि, वाणिज्यिक भूमि, औद्योगिक भूमि, आवासीय भूमि, और वन भूमि। भूमि उपयोग की उपयुक्तता का आकलन भूमि के प्रत्येक श्रेणी के लिए उपयुक्त उपयोग की पहचान की जाती है। इसमें कृषि, उद्योग, वन, जलाशय, आवासीय क्षेत्रों आदि के लिए भूमि का विश्लेषण किया जाता है। नीति निर्धारण और नियोजन सरकार और स्थानीय निकायों द्वारा इस डेटा के आधार पर भूमि उपयोग की नीतियां बनाई जाती हैं, जिससे भूमि का सर्वोत्तम उपयोगिता सुनिश्चित हो सके। इसमें भविष्य की योजनाओं और विकास परियोजनाओं के लिए भूमि आवंटित की जाती है।

क्रियान्वयन और निगरानी: नीति और योजना को लागू करने के बाद, उसके प्रभावों की निगरानी की जाती है। इसमें भूमि उपयोग के नियमों का पालन सुनिश्चित करना और किसी भी अनियमितता की स्थिति में सुधारात्मक कदम उठाना शामिल है।

भूमि उपयोग योजना का महत्त्व:

भारत जैसे तेजी से शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की ओर बढ़ते देश में भूमि उपयोग योजना का महत्त्व काफी अधिक है। इसके मुख्य लाभ इस प्रकार हैंः

- **संतुलित विकास**: भूमि उपयोग योजना के माध्यम से कृषि, उद्योग, और आवासीय विकास में संतुलन बनाया जा सकता है। इससे किसी एक क्षेत्र में अधिक भूमि उपयोग की समस्या से बचा जा सकता है।
- **पर्यावरणीय संरक्षण**: भूमि उपयोग योजना प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मदद करती है। इससे वन्यजीवन, जल स्रोतों, और पारिस्थितिक तंत्र को बचाने के लिए भूमि आवंटन किया जाता है, जिससे पर्यावरण को हानि से बचाया जा सकता है।
- **कृषि और खाद्य सुरक्षा**: कृषि योग्य भूमि का संरक्षण कर और उसका सही उपयोग सुनिश्चित कर, खाद्य उत्पादन और सुरक्षा में वृद्धि की जा सकती है। इससे खाद्य संकट की स्थिति से निपटा जा सकता है।
- **जनसंख्या प्रबंधन**: भूमि उपयोग योजना के माध्यम से शहरी क्षेत्रों का संतुलित विकास किया जाता है, जिससे शहरीकरण के दबाव को नियंत्रित किया जा सके।

भारत में भूमि उपयोग योजना की चुनौतियाँ:

भारत में भूमि उपयोग योजना के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं, जो इसके प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न करती हैंः

- **अनियोजित शहरीकरण**: शहरीकरण की बढ़ती दर और इसके परिणामस्वरूप होने वाली अव्यवस्थित भूमि उपयोग योजना एक बड़ी चुनौती है। इससे कृषि भूमि का अतिक्रमण हो रहा है।
- **भूमि विवाद और स्वामित्व के मुद्दे**: भूमि स्वामित्व से जुड़े कानूनी विवाद भूमि उपयोग योजना को प्रभावी ढंग से लागू करने में समस्या उत्पन्न करते हैं।
- **पर्यावरणीय क्षति**: भूमि का अनियोजित और अनियंत्रित उपयोग पर्यावरणीय क्षति का कारण बनता है, जिससे भूमि की उत्पादकता और पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचता है।
- **जलवायु परिवर्तन**: जलवायु परिवर्तन के कारण भूमि की स्थिति और उसकी उपयोगिता में तेजी से बदलाव हो रहा है, जिससे भूमि उपयोग योजना में चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

भारत में मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना की दिशा में सरकारी प्रयास:

भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण कदम उठा रही हैं। कुछ प्रमुख सरकारी पहलें इस प्रकार हैंः

- **मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना** (**Soil Health card Scheme**)**:** 2015 में शुरू की गई इस योजना के तहत किसानों को उनकी मृदा की स्थिति के बारे में सटीक जानकारी प्रदान की जाती है। इससे उन्हें अपनी फसलों के लिए सही खाद और उर्वरकों के उपयोग के बारे में मार्गदर्शन मिलता है।
- **राष्ट्रीय कृषि विकास योजना** (**National Agriculture Development Programme & RKVY**): यह योजना कृषि और संबंधित क्षेत्रों में सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए भूमि उपयोग योजना को समर्थन देती है।
- **राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति** (**National Land Use Policy**): इस नीति का उद्देश्य भूमि का संतुलित और सतत उपयोग सुनिश्चित करना है। इसके तहत कृषि भूमि का संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन, और शहरीकरण की चुनौतियों से निपटने के उपाय शामिल हैं।
- **मृदा और जल संरक्षण परियोजनाएँ**: देश के विभिन्न भागों में मृदा और जल संरक्षण परियोजनाएँ चल रही हैं, जिनका उद्देश्य भूमि क्षरण को रोकना और जल संसाधनों का संतुलित उपयोग करना है।

भूमि उपयोग योजना (Land Use Planning):

भूमि उपयोग योजना का उद्देश्य भूमि का विवेकपूर्ण और दीर्घकालिक उपयोग सुनिश्चित करना है। भूमि संसाधनों की अनियंत्रित और अनियोजित उपयोगिता से पर्यावरणीय संकट, भूमि की उर्वरता का नुकसान, और संसाधनों की बर्बादी होती है। भूमि उपयोग योजना इस स्थिति को रोकने के लिए एक रणनीतिक प्रक्रिया है जिसमें भूमि के उपयुक्त उपयोग को लेकर दीर्घकालिक योजनाएं बनाई जाती हैं।

भारत में भूमि उपयोग योजना की प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों से गुजरती हैः

- **भूमि की स्थिति का आकलन**- इसमें विभिन्न भू-भागों की स्थिति, उनकी जलवायु, पारिस्थितिकी और सामाजिक आर्थिक स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।
- **उपयुक्तता का निर्धारण**- मृदा और भूमि की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए विभिन्न क्षेत्रों के लिए किस प्रकार का उपयोग सबसे उपयुक्त होगा, यह निर्धारित किया जाता है।
- **भूमि के प्रकारों का वर्गीकरण**- भूमि को कृषि भूमि, औद्योगिक भूमि, वन भूमि, आवासीय भूमि, आदि में विभाजित किया जाता है।
- **नियोजन और नीति निर्धारण**- दीर्घकालिक विकास को ध्यान में रखते हुए भूमि उपयोग के लिए नीतियां और योजनाएं बनाई जाती हैं। इसमें स्थानीय प्रशासन और सरकारी निकायों की भूमिका होती है।

भूमि उपयोग योजना का महत्त्व:

भारत जैसे तेजी से विकासशील देश में भूमि उपयोग योजना की आवश्यकता और महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।इससे न केवल भूमि का संतुलित और सतत विकास संभव होता है,बल्कि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने में भी मदद मिलती है। भूमि उपयोग योजना के कुछ मुख्य फायदे निम्नलिखित हैं:

- **संतुलित विकास:** विभिन्न क्षेत्रों में कृषि, औद्योगिक, और आवासीय विकास का संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है।
- **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण:** जल, वन, और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को नियंत्रित कर पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है।
- **कृषि और खाद्य सुरक्षा:** कृषि योग्य भूमि का संरक्षण कर कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारत में मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना की चुनौतियाँ:

भारत में मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना के समक्ष कुछ मुख्य चुनौतियाँ हैं:

- **जनसंख्या वृद्धि:** भारत की बढ़ती जनसंख्या भूमि की मांग को बढ़ा रही है, जिससे संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है।
- **भूमि का अनियोजित विकास:** शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, और अन्य विकास गतिविधियों के कारण कृषि भूमि कम होती जा रही है।
- **मृदा क्षरण:** मृदा की उर्वरता कम होने और क्षरण की समस्या से निपटना एक बड़ी चुनौती है।

निष्कर्ष:

मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग योजना भारतीय कृषि, भूमि विकास और सतत विकास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मृदा सर्वेक्षण किसानों को उनकी भूमि की गुणवत्ता, उर्वरता और उपयुक्त फसल प्रबंधन के बारे में सटीक जानकारी प्रदान करता है, जिससे कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। दूसरी ओर, भूमि उपयोग योजना भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भूमि के संतुलित, दीर्घकालिक और वैज्ञानिक उपयोग को सुनिश्चित करती है, जो पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन दोनों प्रक्रियाओं के प्रभावी कार्यान्वयन से न केवल कृषि उत्पादन बढ़ेगा, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबंधन भी संभव होगा। इसलिए आवश्यक है कि सरकार, कृषि विशेषज्ञ, किसान तथा समाज के अन्य वर्ग मिलकर इन योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करें, ताकि एक समृद्ध, पर्यावरण-संतुलित और आत्मनिर्भर भारत का निर्माण किया जा सके।

२

मृदा- भू-आकृति में संबंध और इसका महत्व

लाल चंद मालव, बृजेश यादव, अभिषेक जांगिड़, एम. नोगिया, आर. एल. मीणा, आर. पी. शर्मा और बी. एल. मीना
भा. कृ. अनु. प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर-313001

परिचय:

मिट्टी और भू-आकृतियों के बीच संबंध, जिसे अक्सर "मृदा-भूमि-आकृति संबंध" कहा जाता है। भू-आकृतियों को भू-स्वरुप/भूमि-स्वरुप भी कहा जाता हैं। यह संबंध पृथ्वी की सतह और उस पर बनने वाली मिट्टी के बीच गतिशील अंतःक्रिया को समझने में महत्वपूर्ण है। मिट्टी और भू-आकृति संबंध भू-आकृति विज्ञान और मृदा विज्ञान के मूलभूत पहलू हैं, क्योंकि भू-आकृतियों की विशेषताएं मिट्टी के गुणों, मिट्टी का निर्माण और उसके वितरण को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। ये अंतःक्रियाएं पारिस्थितिक तंत्र को आकार देने, भूमि उपयोग में काम आने वाली किर्याओं को प्रभावित करने और कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय स्थिरता को प्रभावित करने वाली मिट्टी की विशेषताओं को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भू-आकृतियों को पृथ्वी की सतह पर विशिष्ट भू-आकृतिक विशेषताओं के रूप में परिभाषित किया जाता है। जो बड़े पैमाने की विशेषताओं जैसे कि मैदान और पहाड़ से लेकर पृथक पहाड़ियों और घाटियों जैसी छोटी विशेषताओं तक होती हैं। मौसम, पानी, ऊंचाई, धंसाव और मिट्टी का कटाव जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाएं लगातार पृथ्वी की सतह को आकार दे रही हैं। वास्तव में यह परिवर्तन रातोरात नहीं होता हैए हमें इन परिवर्तनों को नोटिस करने में सैकड़ों और हजारों साल लग जाते हैं। ऊंचाई और ढलान के आधार पर, भू-आकृतियों को पर्वत, पठार, पेडिमेंट, पेडिप्लेन और मैदान आदि में वर्गीकृत किया जा सकता है।

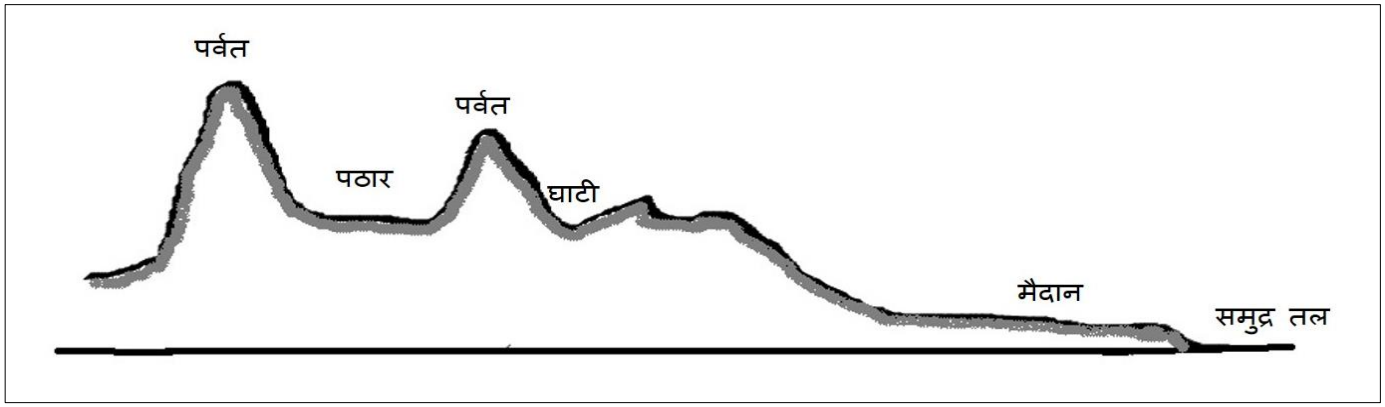

चित्र 1. **विभिन्न प्रकार की भू-आकृतियाँ**

मृदा-भू.आकृति संबंध क्या है?

मृदा-भूमि स्वरूप संबंध पृथ्वी की सतह के भू-आकृतिक तत्वों जैसे कि पहाड़ियां, घाटियां, मैदान, और ढलानों और इन पर विकसित होने वाली मृदा के बीच जटिल संबंध को दर्शाता है। भूमि स्वरूप, मृदा निर्माण को, ढलान, दिशा, ऊँचाई, और जल निकासी जैसे कारकों के माध्यम से प्रभावित करते हैं। इसके विपरीत, मृदा की विशेषताएँ, क्षरण दर, पौधों की वृद्धि, और जल विज्ञान प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं, जो समय के साथ भूमि स्वरूप को आकार देते हैं। यह द्वि-दिशात्मक संबंध यह समझने के लिए आवश्यक है कि परिदृश्य कैसे विकसित होते हैं और वे विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों का समर्थन कैसे करते हैं। ढलान की दिशा, ढलान की लंबाई, वक्रता, पहाड़ की चोटी से दूरी, और ऊँचाई जैसे भूमि स्वरूप के पैरामीटर मृदा निर्माण प्रक्रिया और अंततः मृदा की विशेषताओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। सामान्यतः ऊँचाई और ढलान का मृदा की विशेषताओं से सबसे मजबूत संबंध होता है।

भू-आकृति मृदा निर्माण को कैसे प्रभावित करते हैं:

मृदा निर्माण, या पेडोजेनेसिस, एक जटिल प्रक्रिया है जो जलवायु, जीव, स्थलाकृति, पैतृक पदार्थ, और समय जैसे विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है। स्थलाकृति, जिसमें भूमि का आकार, ढलान, और दिशा शामिल हैं, मृदा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पहाड़, घाटियां, मैदान, और पठार जैसे भूमि स्वरूप विभिन्न वातावरण प्रदान करते हैं, जहाँ मृदा अलग-अलग तरीके से विकसित

होती है। मृदा-भूमि स्वरूप संबंध में, स्थलाकृति या भूमि का आकार और ढलान विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि यह निम्नलिखित को प्रभावित करता हैः

पानी की आवाजाही/बहाव और जल निकासी :
पहाड़ी या पहाड़ी इलाकों जैसे खड़ी ढलानों पर मिट्टी अक्सर पानी के गंभीर कटाव के कारण उथली या अपूर्ण रूप से विकसित होती है, क्योकि पानी का बहाव अवसाद को जमा करने की जगह, उसका तेजी से हटा देता है। इसके विपरीत, घाटियाँ और समतल मैदानी क्षेत्रों में अवसाद/तलछट जमा होते हैं, जिससे गहरी और अक्सर अधिक उपजाऊ मिट्टी बनती है। इन क्षेत्रों में जल निकासी पैटर्न मिट्टी के विकास में भी योगदान देता है, जो मौजूद कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों की मात्रा को प्रभावित करता है।

कटाव और जमाव :
गुरुत्वाकर्षण और पानी के बहाव के कारण खड़ी ढलानों में अक्सर कम स्थिर मिट्टी होती है, क्योकि पानी का बहाव सतह की परतों को हटा देता है, जिससे चट्टानी या मोटे बनावट वाली मिट्टी शेष बच जाती है। समय के साथ, कटाव पूरी पहाड़ियों को आकार दे सकता है, जिससे खड़ी ढलानें कम ढलानों में बदल जाती हैं। ढलान ढाल कटाव की दर को प्रभावित करती है, जो मिट्टी की गहराई, बनावट और संरचना को प्रभावित करती है। दूसरी ओर, तराई क्षेत्रों में जमाव की संभावना अधिक होती है, जहां सिल्ट और क्ले जैसे महीन कण जमा होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उच्च जल धारण क्षमता वाली गहरी, अधिक उपजाऊ मिट्टी बनती है।

अस्पेक्ट और सूक्ष्म जलवायु:
अस्पेक्ट उस दिशा को दर्शाता है जिसमें ढलान का सामना होता है। यह सूर्य की रोशनी के संपर्क में भिन्नताओं के कारण मिट्टी के तापमान और नमी पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के लिए, उत्तरी गोलार्ध में दक्षिण की ओर ढलानें अधिक सूर्यप्रकाश प्राप्त करती हैं, जिससे वहाँ का तापमान अधिक होता है और स्थितियाँ शुष्क होती हैं। इस कारण से मिट्टी में जैविक पदार्थ और नमी कम होती है, जिससे उसकी उर्वरता कम हो जाती है। दूसरी ओर, उत्तर की ओर ढलानें सीधे सूर्यप्रकाश के संपर्क में कम आती हैं, इसलिए वे ठंडी और नम होती हैं। उत्तर की ओर ढलानों पर मिट्टी में अधिक जैविक पदार्थ होते हैं, ऐसे क्षेत्रों सघन वनस्पति पायी जाती हैं।

ऊंचाई:
ऊंचाई वाले स्थानों पर मिट्टी अक्सर कम तापमान और अधिक वर्षा का अनुभव करती है। यह संयोजन लीचिंग को बढ़ावा देता है, जिसमें पानी घुलनशील पोषक तत्वों को मिट्टी की परतों से नीचे की ओर ले जाता है। इन क्षेत्रों में मिट्टी आमतौर पर अम्लीय और कम उपजाऊ होती है। इसके विपरीत, ऊंचाई वाले क्षेत्रों से अवसादों के जमाव के कारण निचले इलाकों की मिट्टी अधिक पोषक तत्वों से भरपूर होती है। यह विविध पौधों के साथ-साथ गहन कृषि के लिए भी उपयुक्त होती है।

मिट्टी किस प्रकार भू-आकृति के विकास को प्रभावित करती है:
जैसे, भू-आकृतियाँ मिट्टी की विशेषताओं को आकार देती हैं, वैसे ही मिट्टी भी भू-आकृति विकास को प्रभावित करने में सक्रिय भूमिका निभाती है। उच्च कार्बनिक पदार्थ और अच्छी संरचना वाली मिट्टी ऐसी वनस्पति का समर्थन करती है जो भूमि के स्वरूप को स्थिर कर सके और कटाव को भी कम करने में सक्षम हो। यह ढलान वाले क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहां वनस्पति आवरण भूस्खलन और मिट्टी के नुकसान को रोक सकता है। इसके विपरीत, कम उर्वरता और खराब संरचना वाली निम्नीकृत मिट्टी वनस्पति को सहारा देने में कम प्रभावी होती है, जिससे वे कटाव और भूमि के क्षरण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। मिट्टी के गुण, जैसे बनावट और पारगम्यता, इस बात को प्रभावित करते हैं कि पानी किसी भूदृश्य में कैसे आगे बढ़ता है। मिट्टी अपक्षय प्रक्रियाओं में योगदान करती है जो समय के साथ भू-आकृतियों को आकार देती है। उदाहरण के लिए, उच्च अम्लता वाली मिट्टी अंतर्निहित चट्टानों के रासायनिक अपक्षय को तेज कर सकती है, जिससे भू-आकृतियों का विकास प्रभावित होता है।

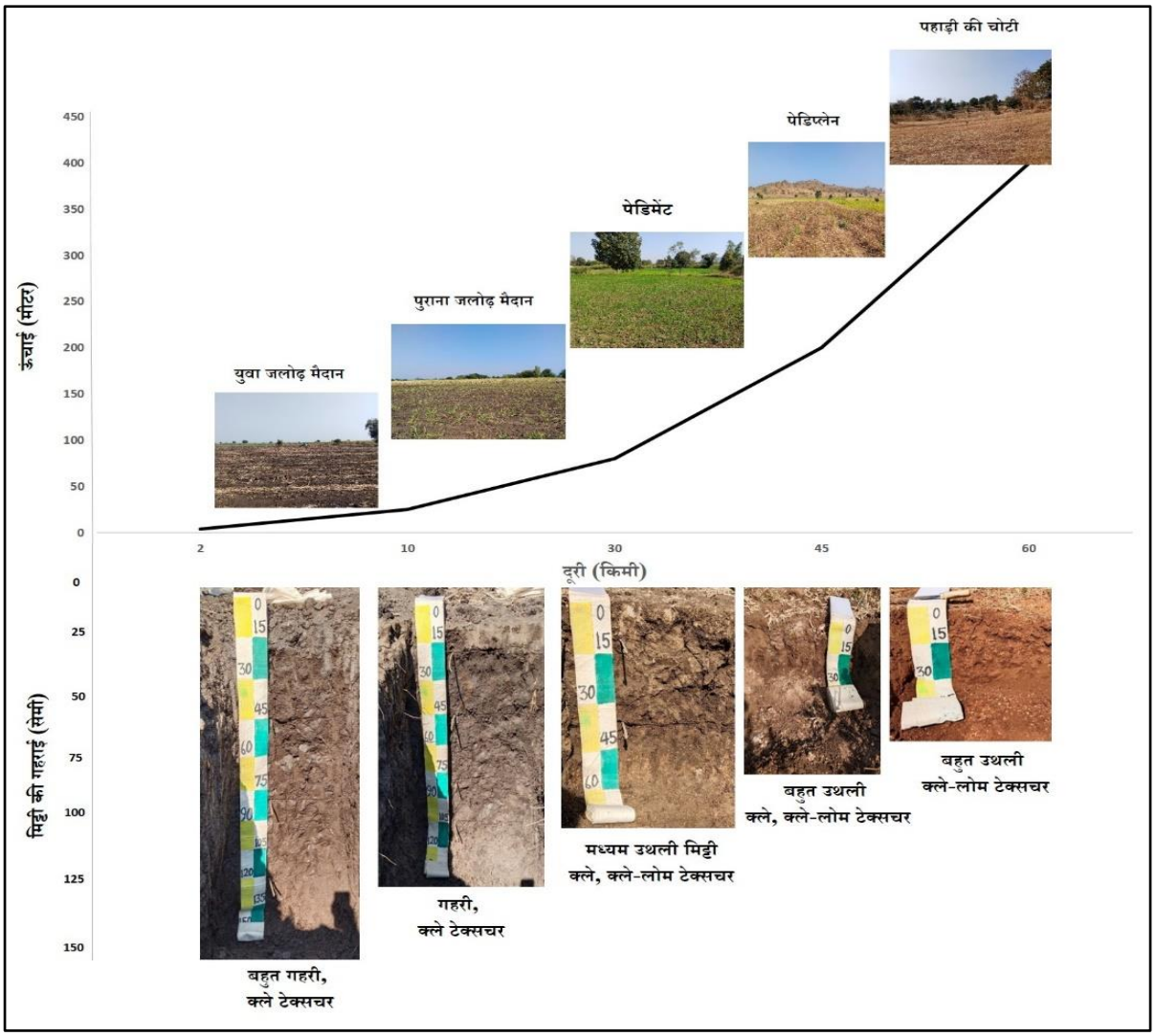

चित्र 2. **गुजरात के तापी जिले में विभिन्न भू-आकृतियों में मिट्टी में भिन्नता**

मिट्टी- भू-आकृति संबंध का महत्व:

स्थायी भूमि प्रबंधन, कृषि, और संरक्षण के लिए मिट्टी भू-आकृतियों के संबंध को समझना अत्यंत आवश्यक है। मिट्टी और स्थलरूप के बीच के संबंध का अध्ययन करके, हम भूमि उपयोग के बारे में सूचित निर्णय ले सकते हैं जो मिट्टी के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं, कटाव को रोकते हैं, और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को बनाए रखते हैं। यह अनुमान लगाने में भी सहायक होता है कि कैसे परिदृश्य पर्यावरणीय परिवर्तनों, जैसे जलवायु परिवर्तन या भूमि उपयोग में बदलाव, के प्रति प्रतिक्रिया कर सकते हैं। कृषि, संरक्षण और शहरी नियोजन जैसे विभिन्न क्षेत्रों में मिट्टी-स्थलरूप संबंध को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है, जैसा कि नीचे वर्णित है:

- कृषि भूमि की उत्पादकता मिट्टी के गुणों और स्थलरूप से निकटता से जुड़ी होती है। उदाहरण के लिए, सीढ़ीदार खेती एक भूमि प्रबंधन तकनीक है जो ढलान वाले क्षेत्रों में समतल सतहें बनाने के लिए प्रयोग की जाती है, जिससे कटाव कम होता है और जलधारण में सुधार होता है। इस प्रकार की तकनीकें इस समझ से प्रेरित होती हैं कि मिट्टी और स्थलाकृति कैसे एक-दूसरे से प्रभावित होती है।
- प्रभावी मृदा संरक्षण रणनीतियाँ मृदा क्षरण को रोकने और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को बनाए रखने के लिए आवश्यक होती हैं। कंटूर जुताई, कवर फसल लगाना और पुनः वनीकरण जैसी तकनीकें सभी कटाव को कम करने और मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए मिट्टी-स्थलरूप संबंध पर आधारित होती हैं।

- शहरी नियोजन में भी मिट्टी-स्थलरूप संबंध दिशा-निर्देश देता है। उदाहरण के लिए, ढलान पर निर्माण करने के लिए मिट्टी की स्थिरता और जल निकासी का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना आवश्यक होता है ताकि भूस्खलन और कटाव को रोका जा सके। इसके अलावा, मिट्टी और स्थलरूप के संबंध में जल प्रवाह को समझना तूफानी जल प्रवाह प्रबंधन और बाढ़ को रोकने में सहायक होता है।

निष्कर्ष:

मिट्टी-स्थलरूप संबंध पृथ्वी की सतह की प्रक्रियाओं और जीवन को समर्थन देने वाली मृदा निर्माण प्रकिर्या को परिभाषित करता हैं। इस जटिल संबंध को समझकर, हम पर्यावरणीय लचीलापन और स्थिरता को बढ़ावा देने वाले तरीकों से भूमि के संरक्षण और उपयोग को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। इस संबंध का अध्ययन करके वैज्ञानिक और भूमि प्रबंधक मिट्टी के वितरण का पूर्वानुमान लगा सकते हैं, मिट्टी की उर्वरता को समझ सकते हैं, और भूमि उपयोग की योजना को प्रभावी ढंग से बना सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर नदी घाटियों तक, प्रत्येक स्थलरूप मिट्टी के विकास के लिए एक अद्वितीय पर्यावरण प्रदान करता है, जो न केवल परिदृश्य को आकार देता है, बल्कि उस क्षेत्र की पारिस्थितिक और कृषि संभावनाओं को भी निर्धारित करता है। यह संबंध न केवल जैव विविधता के लिए एक आधार प्रदान करता है, बल्कि भूमि क्षरण, जलवायु परिवर्तन, और खाद्य सुरक्षा से संबंधित वैश्विक चुनौतियों के समाधान में एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में भी कार्य करता है।

|| मिट्टी को बचाओ, प्रकृति को सजाओ ||

३

भारतीय कृषि.पारिस्थितिक क्षेत्रों में फसल पैटर्न एवं पद्धतिया

एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर के नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना, अशोक कुमार,
एच.एल. खरबीकर, सिरिसा अडमाला, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर440033
भा.कृ.अनु.प.- रा.मृ.स.एवं भू.उ.नि.ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र दिल्ली, आई.ए.आर.आई. कैम्पस, नई दिल्ली

मिट्टी, जल, जलवायु, वनस्पति और जीव-जंतु किसी भी देश के मूलभूत प्राकृतिक संसाधन होते हैं। वही मिट्टी इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है जो मानव की आवश्यकताओ का का मूल स्रोत है। कृषि और अन्य संबद्ध गतिविधियाँ और बदले में किसी देश की समृद्धि और आर्थिक विकास मिट्टी के संसाधन पर निर्भर करता है। इसलिए, निरंतर उत्पादन के लिए मिट्टी के प्रबंधन हेतु इसकी अंतर्निहित क्षमता और सीमाओं को समझना महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत विषम भू-आकृतियों और विविध जलवायु परिस्थितियों से संपन्न है जैसे ऊँचे पहाड़, घाटी डेल्टा, उच्च ऊँचाई वाले जंगल, प्रायद्वीपीय पठार, विभिन्न प्रकार की भूवैज्ञानिक संरचनाएँ जिनका तापमान आर्कटिक ठंड से लेकर भूमध्यरेखीय गर्मी तक भिन्न होता है, और अत्यधिक शुष्कता (कुछ सेमी (<10 सेमी) से लेकर अत्यधिक आर्द्र (विश्व में सबसे अधिक वर्षा (1120 सेमी)) तक कई सौ सेमी वर्षा होती है। यह ऊँचे पठार, खुली घाटियों, लहरदार ऊपरी भूमि, उपजाऊ मैदान, दलदली निचली भूमि और बंजर रेगिस्तान का व्यापक रूप प्रदान करता है। देश में इन विविध पर्यावरणीय स्थितियों के परिणामस्वरूप दुनिया के किसी भी अन्य भाग की तुलना में मिट्टी की विविधता अधिक है। इसलिए, मृदा, जलवायु और प्राकृतिक संरचना तथा अनुकूल नमी उपलब्धता अवधियों अर्थात वृद्धि अवधि (एलजीपी) के संदर्भ में अपेक्षाकृत समरूप क्षेत्रों को शामिल करते हुए कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों का व्यवस्थित मूल्यांकन, उपयुक्त भूमि उपयोग की योजना बनाने में मदद करता है (गजभिये और मंडल, 2000)।

देश में इन बदलती पर्यावरणीय स्थितियों के परिणामस्वरूप मिट्टी की विविधता में वृद्धि हुई है। इसलिए, कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों के व्यवस्थित मूल्यांकन में मिट्टी, जलवायु और प्राकृतिक संरचना और अनुकूल नमी उपलब्धता अवधि (बढ़ते मौसम की लंबाई) के संदर्भ में अपेक्षाकृत समरूप क्षेत्रों को समूहीकृत करने और उपयुक्त भूमि उपयोग की योजना बनाने में व्यापक गुंजाइश है। मिट्टी, जैव-जलवायु प्रकार और भौगोलिक स्थितियों के आधार पर, देश को 20 कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्रों (AER) और 60 कृषि-पारिस्थितिकी उप-क्षेत्रों (AESR) में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक कृषि-पारिस्थितिकी उप-क्षेत्र को दीर्घकालिक भूमि उपयोग रणनीतियों के विकास हेतु जिला स्तर पर कृषि-पारिस्थितिकी इकाई में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयुक्त सुधारात्मक उपायों के साथ बाधाओं और क्षमताओं का वर्णन और सुझाव दिया गया है ताकि बेहतर समझ और अपनाने के लिए योजनाएँ तैयार की जा सकें और फसल/फसल प्रणाली का सुझाव दिया जा सके जो मिट्टी की भौतिक स्थितियों, पोषक तत्वों की उपलब्धता और कार्बनिक कार्बन पूल द्वारा नियंत्रित भूमि की गुणवत्ता में गिरावट को कम करने में मदद करेगी। नागपुर स्वयं मध्य उच्चभूमि (मालवा, बुंदेलखंड और पूर्वी सतपुड़ा पर्वतमाला) कृषि-पारिस्थितिक उप-क्षेत्र में आता है, जिसे उष्ण, उप-आर्द्र (शुष्क/नम) कहा जाता है (गजभिये और मंडल, 2000)।

नागपुर स्थित राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो (एनबीएसएस और एलयूपी) द्वारा भारत को जलवायु, मृदा प्रकार और फसल पदध्ती के आधार पर 20 कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में वर्गीकृत करता है। इन क्षेत्रों को विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर उप-क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

क्र.संख्या	एईआर	वितरण	प्रमुख फसल पदध्ती
1	उथली कंकालीय मिट्टी वाला ठंडा शुष्क कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	ठंडा शुष्क कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र लद्दाख, चिलास वजारत, मुजफ्फराबाद के कुछ हिस्सों, उत्तरी कश्मीर और उत्तर-पश्चिमी हिमालय के गिलगित जिलों को कवर करता है।	मोटे बाजरा-गेहूं/जौ; मक्का/चावल-गेहूं/जौ; परती-गेहूँ; काले चने-गेहूं सेब और अन्य शीतोष्ण फल जैसे आड़, खुबानी, नाशपाती, चेरी, बादाम, लीची, अखरोट,
2	रेगिस्तानी और खारी मिट्टी वाला गर्म शुष्क कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	गर्म शुष्क कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र पंजाब के दक्षिण-पश्चिमी हिस्सों, हरियाणा, राजस्थान के पश्चिमी हिस्सों और गुजरात के कच्छ प्रायद्वीप को कवर करता है और भटिंडा, मनसा, फिरोजपुर और मुक्तसर जिलों, पंजाब, सिरसा, हिसार, भिवानी और फतेहाबाद जिलों, हरियाणा में वितरित किया जाता है; जैसलमेर, बीकानेर, गंगानगर, हनुमानगढ़, चुरू, झुंझुनूं, सीकर, नागौर, बाड़मेर, जालोर और जोधपुर जिले, राजस्थान और कच्छ जिला, गुजरात। (24.7 एमएचए; टीजीए का 7.5%)। वर्षा आधारित:	बाजरा/काला चना/मूंगफली/हरा चना-गेहूं/चना सिंचित: मक्का/चावल/कपास/सोयाबीन-सरसों/चना
3	लाल और काली मिट्टी वाला गर्म शुष्क कृषि क्षेत्र	गर्म शुष्क कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले और कर्नाटक के बेल्लारी जिले में वितरित किया जाता है (1.81 एमएचए; टीजीए का 0.6%)। वर्षा आधारित:	मूंगफली + लाल चना, कुलथी दाल / ज्वार / बाजरा / बाजरा / हरा चना / काला चना - कुसुम (वर्षा आधारित) सिंचित: कपास/मक्का-बाजरा/सूरजमुखी, धान-चावल
4	मोटे दोमट जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म अर्ध-शुष्क कृषि क्षेत्र	यह क्षेत्र हरियाणा के पंचकुला, अंबाला, यमुनानगर, कुरूक्षेत्र, कैथल, करनाल, जिंद, सोनीपत, रोहतक, झज्जर, महेंद्रगढ़, रेवारी, गुड़गांव और फरीदाबाद जिलों में वितरित किया जाता है; गुरदासपुर, अमृतसर, फिरोजपुर, फरीदकोट, संगरूर, पटियाला, फतेहगढ़ साहेब, रूपनगर, नवांशहर, कपूरथला, लुधियाना और होशियारपुर जिले, पंजाब और दिल्ली का दक्षिण-उत्तर भाग (7 एमएचए; टीजीए का 2.1%)।	चावल/सोयाबीन/कपास/बाजरा-गेहूं/ हराचना/काला चना/आलू/सरसों/सूरजमुखी/चना/दाल-हरा चना/काला चना/सूरजमुखी; दालें-गन्ना
5	पुरानी जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म अर्ध-शुष्क कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	यह क्षेत्र बनासकांठा (पालनपुर), पाटन, साबरकांठा (हिम्मतनगर), महेसाणा, गांधीनगर, खेड़ा, आनंद, दाहोद, पंचमहलस और वडोदरा जिलों में फैला हुआ है। गुजरात; राजस्थान के सिरोही, पाली, अजमेर, जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, दौसा, सवाई, माधोपुर, बूंदी, भीलवाड़ा, राजसमंद, उदयपुर, डूंगरपुर,	कपास/ज्वार/बाजरा/मक्का/अरहर/सोया बीन/तिल-गेहूं/जौ/हरा चना/काला चना/सूरजमुखी/सरसों/आलू-हरा चना/काला चना/सूरजमुखी

		चित्तौड़गढ़ और बांसवाड़ा जिले; और मुरैना, श्योपुर, शिवपुरी, दतिया, ग्वालियर और भिंड जिले, मध्य प्रदेश। मोटे तौर पर ये जिले मालवा क्षेत्र के मध्य उच्चभूमि के अंतर्गत आते हैं, जिसमें गुजरात के मैदानी इलाके, मध्य प्रदेश के पश्चिमी हिस्से और राजस्थान के दक्षिणी हिस्से (22.9 एमएचए; टीजीए का 6.9%) शामिल हैं।	
6	जलोढ़ और तराई मिट्टी के साथ गर्म अर्ध-शुष्क से शुष्क उप-आर्द्र कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बागपत, मेरठ, गाजियाबाद, बुलन्दशहर, मथुरा, महामाया नगर, आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, इटावा, औरैया, कानपुर, कन्नौज, फतेहगढ़, एटा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, बदायूँ, अलीगढ, हरदोई, ज्योति फुले नगर,बिजनोर,रामपुर,पीलीभीत, लखीमपुर,खीरी,सीतापुर,बहराइच,श्रावस्ती,गोंडा,बाराबंकी,उन्नाव,लखनऊ,बल रामपुर,सिद्धार्थ नगर,बस्ती,महाराजगंज,कुशीनगर,गोरखपुर,देवरिया,बलिया,गाजीपुर,आजमगढ़, अम्बेडकर नगर,सुल्तानपुर,प्रतापगढ़ , उत्तर प्रदेश में रायबरेली, फ़तेहपुर, जौनपुर, वाराणसी, सेंट रविदास नगर; और बिहार में पश्चिमी चंपारण, गोपालगंज और सीवान (21.7 एमएचए; टीजीए का 6.6%),	चावल-गेहूं; ज्वार/रागी/अरहर-गेहूं/जौ/दाल/मूंग/काला चना/आलू/सरसों/सूरजमुखी-हरा चना/काला चना/सूरजमुखी और गन्ना, सब्जियां और फलों की फसलें जैसे आम के बगीचे
7	महाराष्ट्र के दक्कन पठार, पूर्वी मध्य प्रदेश और गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में मध्यम गहरी काली मिट्टी के साथ गर्म अर्ध-शुष्क कृषि क्षेत्र।	इस क्षेत्र में नंदुरबार, धुले, नासिक, ठाणे (भाग), पुणे, अहमदनगर, सतारा, सांगली, कोल्हापुर, सोलापुर, उस्मानाबाद, लातूर, नांदेड़, हिंगोली, परभणी, बिड, जालना, औरंगाबाद, बुलढाणा, जलगांव जिले शामिल हैं। , महाराष्ट्र में अकोला, वाशिम, अमरावती, यवतमाल और वर्धा; मध्य प्रदेश में झाबुआ, धार, बड़वानी, पश्चिमी निमाड़, पूर्वी निमाड़, होशंगाबाद के कुछ हिस्से, सीहोर, रायसेन, भोपाल, विदिशा, गुना, रायगढ़, शाजापुर, उज्जैन, इंदौर, देवास और हरदा; राजस्थान में बारां, झालावाड़ और कोटा के कुछ हिस्से, गुजरात में जामनगर, पोरबंदर, जूनागढ़, अमरेली, भावनगर, अहमदाबाद के कुछ हिस्से, सुरेंद्रनगर और राजकोट; और कर्नाटक में बीदर, गुलबर्गा, बीजापुर, बेलगाम और बागलकोट के कुछ हिस्से 48.9 मिलियन हेक्टेयर (टीजीए का 14.9%)।	चावल/सोयाबीन/कपास/बाजरा/ज्वार/ अरहर/मूंगफली/अरंडी-ज्वार/चना/सूरजमुखी/कुसुम/गेहूं/मूंग/ काला चना/आलू/सरसों/मूंगफली-हरा चना/काला चना/सूरजमुखी/मूंगफली ; गन्ना

8	मिश्रित लाल और काली मिट्टी वाला गर्म अर्ध-शुष्क कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	आंध्र प्रदेश में कुरनूल, प्रकाशम, कडप्पा के कुछ हिस्से, गुंटूर, कृष्णा, पश्चिम और पूर्वी गोदावरी के कुछ हिस्से; आदिलाबाद, निज़ामाबाद। तेलंगाना में करीमनगर, मेडक, वारंगल, खम्मम, नलगोंडा, महबूबनगर, रंगारेड्डी; और गडग, कोप्पल के कुछ हिस्से, रायचूर, बेलगाम के कुछ हिस्से, धारवाड़, चित्रदुर्ग के कुछ हिस्से और कर्नाटक राज्य के शिमोगा। (25.9 एमएचए; टीजीए का 7.9%)।	चावल / कपास / ज्वार / मक्का / बाजरा / रागी / अरहर / मिर्च-गेहूं / चना / हरा चना / काला चना / आलू / सरसों / सूरजमुखी / मूंगफली / मक्का-हरा चना / काला चना / सूरजमुखी / मूंगफली / सोयाबीन / मक्का/गन्ना
9	लाल दोमट मिट्टी के साथ गर्म अर्धशुष्क कृषि क्षेत्र	कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र में तमिलनाडु के दक्षिण दक्कन के पठार और कर्नाटक के पठार के हिस्से शामिल हैं। इसमें कर्नाटक के चिकमगलूर, चित्रदुर्ग, हसन, तुमकुर, बेंगलुरु (ग्रामीण और शहरी), कोलार, चामराजनगर, मैसूर, कोडागु और दक्षिण कन्नड़ जिलों के क्षेत्र शामिल हैं; वेल्लोर, धरमपुरी, सलेम, नामक्कल, इरोड, नीलगिरि, कोयंबटूर, तमिलनाडु में टेनी, मदुरै, डिंडीगुल, करूर, तिरुचिरापल्ली, पेरम्बलूर, पुडुकोथाई, शिवगंगा और विरुदनगर के कुछ हिस्से, (18.7 मिलियन हेक्टेयर, टीजीए का 5.7%)	चावल/कपास/सोयाबीन/अरहर/ज्वार/ मोती बाजरा/मक्का/रागी /लोबिया/फील्ड बीन-गेहूं/मूंग चना/काला चना/आलू/सरसों/सूरजमुखी/मूंगफली/ मक्का/मसूर/चना/खीरा/प्याज-हरा चना/काला चना/सूरजमुखी/मूंगफली/सोयाबीन/मक्का /गन्ना
10	मध्यम गहरी काली मिट्टी, सतपुड़ा, महानदी बेसिन और महाराष्ट्र पठार के किनारे के साथ गर्म उप-आर्द्र कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र।	यह मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा, सिवनी, बैतूल, बालाघाट, मंडला, डिंडोरी, जबलपुर जिलों, दमोह, सागर, रायसेन, नरसिंहपुर के कुछ हिस्सों में वितरित किया जाता है; महाराष्ट्र में गढ़चिरौली, चंद्रपुर, भंडारा, गोंदिया, नागपुर और यवतमाल के कुछ हिस्से; और छत्तीसगढ़ में राजनांदगांव, कवर्धा, बिलासपुर, जांजगीर चांपा, रायपुर और दुर्ग (15.2 मिलियन हेक्टेयर; टीजीए का 4.6 प्रतिशत)।	चावल/कपास/ज्वार/मक्का/बाजरा/अरहर /काला चना - गेहूं/आलू/सरसों/सूरजमुखी/मूंगफली/ मक्का/चना/सब्जियां -हरा चना/काला चना/सूरजमुखी/मूंगफली/मक्का और गन्ना
11	लाल और पीली मिट्टी के साथ गर्म उप-आर्द्र कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र [J3C4(3)]	पूर्वी छोटानागपुर पठार का भाग, उत्तरी छत्तीसगढ़ और बुन्देलखण्ड क्षेत्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और झारखण्ड; सीधी, रीवा, शहडोल, सतना, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश; छत्तीसगढ़ के कोरिया, सरगुजा, जशपुर नगर, बिलासपुर के कोरबा भाग और रायगढ़; गढ़वा, पलामू, चतारा, हज़ारीबाग़, कोडरमा, लोहादरगा, गुमला, रांची, बोकारो, गिरिडीह, झारखंड; सोनभद्र, मिर्ज़ापुर, चंदौली के कुछ हिस्से, इलाहाबाद, चित्रकोट, बांदा, झाँसी, महोबा, हमीरपुर, ललितपुर, उत्तर प्रदेश;	चावल/ज्वार/बाजरा/मक्का/अरहर/ सोयाबीन/काला चना-गेहूं/आलू/सरसों/सूरजमुखी/चना/मक्का/ मटर--हरा चना/सूरजमुखी/तिल

		और कैमूर और रोहतास, बिहार के कुछ हिस्सों में (21.6 मिलियन हेक्टेयर; टीजीए का 6.6%)।	
12	लाल और लैटेराइट मिट्टी के साथ गर्म उप-आर्द्र कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	छोटानागपुर पठार, झारखंड, पश्चिमी भाग, पश्चिम बंगाल, पूर्वी घाट, ओडिशा और छत्तीसगढ़ का बस्तर क्षेत्र (दंडकारण्य और गरजत पहाड़ियाँ); यह क्षेत्र दंतेवाड़ा, बस्तर, कांकेर, धमतरी, रायपुर और महासमुंद जिलों के कुछ हिस्सों, छत्तीसगढ़ में वितरित है; मलकानगिरी, कोरापुट, रायगढ़, गजपति, नबरंगपुर, बोलांगीर, सुंदरगढ़, देवगढ़, बौडा, फुलबनी, गंजम, नयागढ़, कटक, अंगुल, ढेंकनाल, जाजपुर, मयूरभंज, केंदुझागढ़, खोर्दा जिले, ओडिशा; महाराष्ट्र में गढ़चिरौली जिलों के कुछ हिस्से; पुरुलिया, बांकुरा और मेदिनीपुर जिलों के कुछ हिस्से, पश्चिम बंगाल; श्रीकाकुलम और विशाखापत्तनम जिले, आंध्र प्रदेश (26.6 मिलियन हेक्टेयर, 8.1% टीजीए)।	
13	जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म उप आर्द्र कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	बिहार के दक्षिण-पश्चिमी और मध्य भागों में निचले गंगा के मैदान; यह बिहार के बक्सर, भोजपुर, पटना, नालंदा, जमुई, बांका, भागलपुर, मुंगेर, पश्चिम और पूर्वी चंपारण, मुजफ्फरपुर, वैशाली, सारण, सीवान, समस्तीपुर और खगड़िया जिलों में वितरित किया जाता है। (5.3 मिलियन हेक्टेयर; टीजीए का 1.6%)।	चावल/मक्का/अरहर/मूंग चना/तंबाकू/मिर्च/हल्दी-गेहूं/हरा चना/काला चना/आलू/सरसों/सूरजमुखी/मूंगफली/ मक्का/मसूर/गन्ना - चावल/सूरजमुखी/मक्का/धनिया
14	उप-पर्वतीय उथली और कंकालीय मिट्टी के साथ गर्म उप-आर्द्र से आर्द्र (प्रति-आर्द्रता के समावेश के साथ) कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र	कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र जम्मू और कश्मीर के पश्चिमी हिमालय, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्रों तक सीमित है; यह कठुआ, उधमपुर, जम्मू, रियासी, मीरपुर, पुंछ, सोंथ और मुजफ्फराबाद के कुछ हिस्सों, जम्मू/कश्मीर जिलों में वितरित किया जाता है; चंबा, लाहुल और स्पीति, कांगड़ा, ऊना, हमीरपुर, बिलासपुर, मनाली, कुल्लू, किन्नौर, शिमला, सोन और सिरमौर, हिमाचल प्रदेश; और उत्तर काशी, देहरादून, टेहरी गढ़वाल, पौरी गढ़वाल, रुद्रपुर, चमोली, पिथोरागढ़, बागेश्वर, अल्मोडा, नैनीताल, चंपावत और उधम सिंह नगर, उत्तराखंड (15.5 एमएचए; टीजीए का 4.7%)।	चावल/मक्का/रागी/बाजरा/सोयाबीन/ काला चना/मूंगफली--गेहूं/सरसों/सूरजमुखी--हरा चना/सूरजमुखी और गन्ना और सेब
15	बिहार और पश्चिम बंगाल और असम के	यह बिहार राज्य के सीतामढी, मधुबनी, किशनगंज, मधेपुरा, कोशी, समस्तीपुर	चावल/मक्का/अरहर/मूंगफली - चावल/आलू/सरसों/सूरजमुखी/मूंगफली/

	दक्षिणी हिस्सों में दोमट से चिकनी जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म उप-आर्द्र कृषि क्षेत्र।	और दरबंगा जिलों में व्यापक रूप से वितरित किया जाता है; पश्चिम बंगाल में 24 परगना (उत्तर और दक्षिण), हावड़ा, नादिया, बांकुरा के कुछ हिस्से, बर्द्धमान, बीरभूम, बहरामपुर और मालदह। (5.2 मिलियन हेक्टेयर, टीजीए का 1.6%)।	मक्का/जूट - चावल/हरा चना/काला चना/सूरजमुखी/मूंगफली/मक्का/सब्जियां और गन्ना और चाय, खट्टे फल और अनानास के बागान।
16	दोमट से चिकनी जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म आर्द्र से प्रति-आर्द्र पारिस्थितिकी क्षेत्र [Q8B(A)6]	पश्चिम बंगाल के उत्तरी पहाड़ी हिस्से और ब्रह्मपुत्र घाटी। यह बिहार के कटिहार और पूर्णिया जिलों के कुछ हिस्सों में वितरित किया जाता है; उत्तरी कछार हिल्स, कार्बी आंगलोंग, गोलाघाट, जोरहाट, सिबसागर, दिलबर्गगढ़, तिनसुकिया, धेमाजी, लखीमपुर, सोनितपुर, नागांव, तेजपुर, बारपेटा, बोंगीगांव, धुबरी, गोलाघाट, मोरीगांव, कामरूप, गोलपारा, कोकराझार, नलबाड़ी, असम के कुछ हिस्से; पश्चिम त्रिपुरा, उत्तरी त्रिपुरा, दक्षिण त्रिपुरा, त्रिपुरा के ढालिया जिले; और दिनाजपुर (उत्तर और दक्षिण), जलपाईगुड़ी, कोच बिहार और पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिलों के कुछ हिस्से। (9.7 मिलियन हेक्टेयर; टीजीए का 3.0%)	चावल-चावल-चावल; चावल - चावल/गेहूं/आलू/दालें/सब्जियां/मक्का-सूरजमुखी; मक्का + अदरक; मक्का + सोयाबीन-अदरक + सब्जियां/दालें/खीरा, नारियल सीमा वृक्षारोपण और बागवानी प्रणाली (चाय/काली मिर्च/इलायची/अनानास/संतरा/आड़ू/अन्य खट्टे फल आदि बहुमंजिला प्रणाली)
17	उथली और कंकालीय लाल मिट्टी के साथ गर्म प्रति-आर्द्र कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र	कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम के पहाड़ी राज्य शामिल हैं। यह पूर्वी कामेंग, पापुमपारा, ऊपरी और निचले सुबनसिरी, पश्चिम और पूर्वी सियांग, ऊपरी सियांग, दिबांग घाटी, लोहित, चांगलांग, तवांग और अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी कामेंग जिलों, पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग जिले के कुछ हिस्सों और सिक्किम (8.7 मिलियन हेक्टेयर) में वितरित किया जाता है। ; टीजीए का 2.7%)	चावल/मक्का-चावल/आलू/सरसों/मिर्च/दालें-दालें/सब्जियां; धान/मक्का-हल्दी/अदरक/इलायची/सब्जियां-खीरा; धान/मक्का-दालें/सब्जियां-खीरा; बहुमंजिला फसल प्रणाली में नारंगी, आड़ू, अनानास, कटहल, सब्जियों के साथ केला और चाय, कॉफी और रबर जैसी बागान फसलें शामिल हैं।
18	लाल और पीली मिट्टी के साथ गर्म प्रति-आर्द्र कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र [D3A6]	कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र पूर्वोत्तर के पूर्वांचल क्षेत्र का गठन करता है जिसमें मेघालय, मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम राज्य शामिल हैं; यह क्षेत्र मेघालय के पश्चिम और पूर्वी गारो हिल्स, दक्षिण गारो हिल्स, पश्चिम और पूर्वी खासी हिल्स, रिभोई और जैन्तिया हिल्स में वितरित है; मणिपुर के सेनापति, तामेंगलोंग, पश्चिम और पूर्वी इंफाल, थौबल, बिष्णुपुर, चंदेल, चुरा और चांदपुर; नागालैंड के मोन, मोकोकचुंग, तुएनसांग, वोखा, जुन्हे, फेक, कोहिमा और दीमापुर; मिजोरम के कोलासिब, ममित, आइजोल, चमाफाई, सेरिहिप, लुंगलेई, लावांगतालिया और	चावल/मक्का/मूंगफली/तिल/काला चना/मूंग/सब्जियां-चावल/आलू/सब्जियां/सरसों/तिल/जूट-सब्जियां/तिल/काला चना/मूंग और नारियल + सुपारी + ताड़ + खजूर की बहुमंजिला फसल प्रणाली + संतरे + अनानास + सब्जियाँ

		छिमतुईपुई (10.01 एमएचए; टीजीए का 3.0%)।	
19	तटीय और डेल्टाई जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म उप-आर्द्र (आर्द्र से प्रति-आर्द्र समावेशन के साथ)	ओडिशा और पश्चिम बंगाल के तटीय मैदान, सुवर्णरेखा और निचले गंगा डेल्टा, तटीय आंध्र प्रदेश, कृष्णा और गोदावरी डेल्टा, तमिलनाडु और पुडुचेरी के तटीय क्षेत्र का गठन होता है। कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र। यह 24 परगना (उत्तर और दक्षिण) और मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल जिलों में वितरित किया जाता है; बालेश्वर, केंद्रपाड़ा, जगतसिंहपुर, पुरी और तटीय गंजम, ओडिशा; तटीय श्रीकाकुलम, विजयनगरम, विशाखापनम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, गुंटूर, प्रकाशम और नेल्लोर, आंध्र प्रदेश; तिरुवल्लूर, कांचीपुरम, कुड्डालोर, विल्लुपुरम, तिरुवरुर, नागपट्टिम, तंजावुर, शिवगंगा, पुदुकोट्टई, रामनाथपुरम, तूतीकोरिन, तिरुनेलवेली और कन्याकुमारी, तमिलनाडु; और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। (11.3 एमएचए; टीजीए का 3.4%)।	चावल/कपास/ज्वार/मक्का/अरहर/बाजरा /सोयाबीन - आलू/सूरजमुखी/मूंगफली/मक्का/सरसों/ गन्ना--सूरजमुखी/मूंगफली/काला चना/हरा चना। काजू, कॉफी, चाय, रबर जैसी वृक्षारोपण फसलें और नारियल, सुपारी, आम, मसाले, अनानास और सब्जियों की बहुमंजिला प्रणाली।
20	लाल और लैटेराइट और जलोढ़ मिट्टी के साथ गर्म आर्द्र/प्रति-आर्द्र कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र,	कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक और केरल राज्य में पड़ने वाले उत्तर मध्य और दक्षिण सह्याद्रि का गठन करता है, जो कन्याकुमारी में समाप्त होने वाले अरब सागर के समानांतर चलता है और लक्षद्वीप द्वीप. केरल के कासरगोड, कन्नूर, वायनाड, कोझीकोड, मलापुरम, पलक्कड़, त्रिशूर, एर्नाकुलम, इडुक्की, कोट्टायम, पथनमथिता, कोल्लम और तिरुवंतपुरम में कृषि-पारिस्थितिकी क्षेत्र अच्छी तरह से चिह्नित है; कर्नाटक में दक्षिण कन्नड़, उडुपी और उत्तर कन्नड़; महाराष्ट्र में उत्तर और दक्षिण गोवा, सिंधुदुर्ग, रत्नागिरी, रायगढ़ और ठाणे; और लक्षद्वीप द्वीप (9.47 एमएचए; 2.9% टीजीए)।	चावल/मक्का - हरा चना/काला चना/मूंगफली/आलू/गन्ना/सब्जियाँ- सूरजमुखी/उड़द/सब्जियाँ वृक्षारोपण फसलें, जैसे नारियल, मसाले, सुपारी, ताड़ का तेल, रबर अनानास, टैपिओका और काली मिर्च जैसी बागवानी फसलें

४

बीकानेर संभाग का भूमि संसाधन सूचीकरण और सतत भूमि उपयोग योजना

बी. एल. मीना, आर. पी. शर्मा, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, लाल चन्द मालव, बृजेश यादव,
आर. एस. मीणा एवं अभिषेक जांगिड
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो-क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर

विश्व स्तर पर, भारत पिछले कुछ दशकों में कृषि क्षेत्र में एक प्रमुख भागीदार के रूप में उभरा है। इस राह पर आगे बढ़ने के लिए, देश के कृषि क्षेत्र को तीन प्रमुख मुद्दों पर ध्यान देना होगा। कृषि उत्पादकता में वृद्धि, ग्रामीण गरीबी को कम करना, और खाद्य सुरक्षा की जरूरतों के जवाब में टिकाऊ कृषि विकास सुनिश्चित करना। सरकार की हालिया पहल, जैसे कि किसानों की आय दोगुनी करना, विशेष रूप से दलहन और तिलहन फसलों की उत्पादकता में वृद्धि, लचीली-जलवायु/स्मार्ट कृषि को बढ़ावा देना, प्रति बूंद अधिक फसल, भूमि क्षरण को बेअसर करना आदि का उद्देश्य कृषक समुदायों का उत्थान करना है। ग्रामीण भारत, सबसे कमजोर और कम उपयोग वाले क्षेत्रों पर ध्यान देने के साथ जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। हालाँकि, इन पहलों की दीर्घकालिक व्यवहार्यता, अन्य कारकों के अलावा, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के स्थल-विशिष्ट कार्यान्वयन और आवश्यकता आधारित वैज्ञानिक हस्तक्षेपों पर निर्भर करेगी।

राजस्थान के बीकानेर संभाग में बहुत कठोर जलवायु परिस्थितियाँ और गंभीर भूमि क्षरण के मुद्दे हैं, विशेष रूप से हवा का कटाव, जिस पर प्राकृतिक संसाधनों के प्रभावी उपयोग और अनुकूलित कृषि प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्थायी कृषि भूमि उपयोग योजना विकसित करने पर विचार करने की आवश्यकता है। कम वर्षा, उच्च तापमान और उच्च वाष्पीकरण हानि के साथ संभाग की जलवायु अर्धशुष्क है। संभाग में मिट्टी का विकास एओलियन संशोधित जलोढ़ से हुआ है, जिसके बाद बलुआ पत्थर का अपक्षय हुआ है। बहुत कम रासायनिक अपक्षय हुआ है और मिट्टी का विकास अधिकतर अस्पष्ट है। मुख्य रूप से हल्की बनावट वाली, रेगिस्तानी और कमजोर संरचना वाली मिट्टी, जिसमें कम उर्वरता, बहुत कम जल धारण क्षमता, उच्च पारगम्यता, नहर कमांड क्षेत्र में जलभराव, लवणता और क्षारीयता संभाग की प्रमुख मिट्टी से संबंधित समस्याएं हैं।

बीकानेर संभाग की अधिकांश आबादी की आजीविका मुख्य रूप से कृषि और संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिले के उत्तरी हिस्से को हरित क्रांति की अवधि के दौरान इंदिरा गांधी नहर परिय¨जना (आईजीएनपी) के तहत सिंचाई का पानी मिला, जो कृषि फसलों के क्षेत्र और उत्पादकता में जबरदस्त वृद्धि को दर्शाता है। हालाँकि, यह क्षेत्र वर्तमान में बीकानेर संभाग के बाकी हिस्से में अविकसित है और इसके पुनरोद्धार की आवश्यकता है। इसे प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और बुनियादी ढांचे में सुधार के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। कृषक समुदाय के लिए आजीविका सुरक्षा को बढ़ावा देने और टिकाऊ फसल उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए ये उपाय आवश्यक हैं। इसके अलावा, खेती योग्य क्षेत्र का केवल 10 प्रतिशत ही सुनिश्चित सिंचाई के अंतर्गत है, जिससे टिकाऊ कृषि भूमि उपयोग योजना विकसित करने के लिए मृदा संसाधन आधारित वर्षा आधारित कृषि प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

टिकाऊ स्थल-विशिष्ट भूमि उपयोग योजना के विकास के लिए बड़े पैमाने पर मृदा मानचित्रों पर डेटा और जानकारी की उपलब्धता आवश्यक है, जो उपलब्ध भूमि संसाधनों का सबसे कुशल उपयोग करने के लिए आवश्यक है। इस तथ्य के बावजूद कि क्षेत्र के कुछ हिस्सों में स्थानिक मिट्टी की परिवर्तनशीलता का वर्णन करने के लिए अतीत में प्रयास किए गए है, पूरे बीकानेर संभाग के लिए उच्च-रिजाल्यूशन मृदा संसाधन जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं थे।
यह जानकारी उपयोगकर्ताओं को संभाग के प्रत्येक जिले में भूमि संसाधनों का एक व्यापक डिजिटल और मात्रात्मक अवलोकन प्रदान करती है जो उचित फसल योजना और भूमि उपयोग का चयन करने में सहायता कर सकती है। यह मृदा संसाधन मानचित्रण और अनुकूलित भूमि उपयोग योजना के लिए जमीनी सच्चाई के साथ समर्थित सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग), भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस), डेटा खनन और मॉडलिंग जैसे उन्नत उपकरणों का उपयोग करता है। इसके अतिरिक्त, यह एक समृद्ध मृदा डेटाबेस विरासत और नई मिट्टी की जानकारी एकत्र करने में विशेषज्ञता का लाभ उठाता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य एक विस्तृत डिजिटल भूमि संसाधन सूची तैयार करना और मृदा के मानचित्रों की व्याख्या के आधार पर सिफारिशें प्रदान करना था।

बीकानेर संभाग के बीकानेर, चुरू, श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिलों के लिए मिट्टी की बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध है, इसलिए, भूमि संसाधन सूची तैयार करने के लिए विस्तृत मृदा सर्वेक्षण किया गया था। संभाग के चार जिलों में स्थित संबंधित जियो-टैग

प्रोफाइल से मिट्टी के नमूने एकत्र किए गए। स्थल की विशेषताओं का सत्यापन किया गया और सभी चयनित प्रोफाइलों के प्रत्येक क्षितिज से मिट्टी का नमूना लिया गया। चिन्हित स्थलों से कुल 531 मृदा प्रोफाइल एकत्र किए गए और विभिन्न भौतिक-रासायनिक गुणों के लिए प्रयोगशाला में नमूनों का विश्लेषण किया गया। डिजिटल मृदा मानचित्रण तकनीक का उपयोग आठ प्रमुख मृदा भौतिक-रासायनिक गुणों के स्थानिक वितरण मानचित्र तैयार करने के लिए किया गया था। उच्च-रिजाल्यूशन पर वैश्विक मृदा मानचित्र विनिर्देशों के अनुसार छह मानक गहराई में बालू, सिल्ट, चिकनी मिट्टी, उपलब्ध जल क्षमता, पीएच, विद्युत चालकता (ईसी), मिट्टी कार्बनिक कार्बन (एसओसी), और कैल्शियम कार्बोनेट । एकत्रित आंकड़ों के उप-समूह का उपयोग करके मॉडलों को मान्य किया गया।

जीआईएस वातावरण में विश्लेषणात्मक पदानुक्रमित प्रक्रिया (एएचपी) का उपयोग करके प्रभाग में प्रमुख फसलों की उपयुक्तता के लिए भूमि संसाधनों का मूल्यांकन किया गया था। विभिन्न विषयगत परतों के एकीकरण के माध्यम से फसल उपयुक्तता मानचित्र तैयार किए गए, जिनका उपयोग जिलों की प्रस्तावित कृषि भूमि उपयोग योजना विकसित करने के लिए किया गया। अध्ययन के कई उल्लेखनीय निष्कर्ष नीचे उल्लिखित हैं।

- बीकानेर जिले की मिट्टी मोटे बनावट वाली है जिसमें 80 प्रतिशत से ज्यादा बालू (कुल क्षेत्रफल का 82.5 प्रतिशत), 5-10 प्रतिशत चिकनी मिट्टी (71.1 प्रतिशत) और 5 प्रतिशत से कम सिल्ट (59 प्रतिशत) है, जिसके परिणामस्वरूप बहुत कम पानी होता है और पोषक तत्व धारण क्षमता, उच्च पारगम्यता, और हवा के कटाव के प्रति संवेदनशीलता। बीकानेर जिले की मिट्टी का पीएच, विद्युत् चालकता और मृदा जैविक कार्बन क्रमशः 7.81 से 9.13, 0.01 से 11.55 डेसीसीमेंस प्रति मीटर और 0.05 से 0.40 प्रतिशत तक है। बीकानेर जिले की मिट्टी में कैल्शियम का कार्बोनेट की मात्रा 1.12 से 19.04 प्रतिशत तक है। उपलब्ध जल क्षमता 0.71 से 11.96 प्रतिशत तक भिन्न होता है और 3-5 प्रतिशत वर्ग तक वर्चस्व होता है।
- चूरू जिले की मिट्टी बहुत मोटी बनावट वाली है, जिसमें 80 प्रतिशत बालू (कुल क्षेत्रफल का 84.1 प्रतिशत), 5-10 प्रतिशत सिल्ट (50.3 प्रतिशत), 5-10 प्रतिशत चिकनी मिट्टी (69.9 प्रतिशत) है। जिले की मिट्टी मिट्टी का पीएच, विद्युत् चालकता और मृदा जैविक कार्बन क्रमशः 8.24 से 8.96, 0.12 से 7.39 डेसीसीमेंस प्रति मीटर और 0.08 से 0.30 प्रतिशत तक है। चूरू जिले की मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा 1.22 से 16.61 प्रतिशत तक है, जबकि अधिकांश क्षेत्र (50.12 प्रतिशत) 3-5 प्रतिशत वर्ग के अंतर्गत है। उपलब्ध जल क्षमता 1.8 से 11.1 प्रतिशत तक भिन्न होता है और 3-5 प्रतिशत वर्ग पर हावी होता है और 65.9 प्रतिशत टीजीए को कवर करता है।
- श्रीगंगानगर जिले में बालू, सिल्ट और चिकनी मिट्टी की मात्रा क्रमशः 29.0 से 97.4 प्रतिशत, 0.15 से 43.2 प्रतिशत और 1.2 से 31.7 प्रतिशत तक है। इस जिले की मिट्टी प्रकृति में थोड़ी क्षारीय से क्षारीय है। पीएच, विद्युत् चालकता, मृदा जैविक कार्बन, कैल्शियम कार्बोनेट और उपलब्ध जल क्षमता क्रमशः 8.05 से 9.05, 0.03 से 13.87 डेसीसीमेंस प्रति मीटर, 0.07 से 0.57 प्रतिशत 1.93 से 18.36 प्रतिशत और 0.7 से 13.7 प्रतिशत तक भिन्न होता है।
- हनुमानगढ़ जिले की मिट्टी में बनावट संरचना अर्थात बालू, सिल्ट और चिकनी मिट्टी की मात्रा क्रमशः 24.68 से 94.66 प्रतिशत, 0.15 से 46.22 प्रतिशत और 4.42 से 30.97 प्रतिशत तक होती है। मिट्टी प्रकृति में थोड़ी क्षारीय से क्षारीय और गैर-कैलकेरियस होती है। पीएच, विद्युत् चालकता, मृदा जैविक कार्बन, कैल्शियम कार्बोनेट और उपलब्ध जल क्षमता क्रमशः 8.03 से 9.14, 0.02 से 12.12 डेसीसीमेंस प्रति मीटर, 0.08 से 0.53 प्रतिशत, 1.99 से 21.53 प्रतिशत और 1.46 से 13.98 प्रतिशत तक भिन्न होता है।

प्रमुख फसलों की खेती के लिए फसल उपयुक्तता क्षेत्र:

जीआईएस वातावरण में विश्लेषणात्मक पदानुक्रम प्रक्रिया (एएचपी) का उपयोग करके बीकानेर संभाग के लिए गेहूं, जौ, सरसों, बाजरा, ज्वार, ग्वार, मूंगफली, दालें, चना, कपास, चावल और खजूर विकसित किए गए थे। ख़रीफ़ और रबी सीज़न के लिए संभाग की वैकल्पिक भूमि उपयोग योजना का भी सुझाव दिया गया है।

सुझाए गए वैकल्पिक भूमि उपयोग नियोजन (एएलयूपी) में, बीकानेर और चूरू जिलों के लिए मूंगफली/ग्वार/दालें/बाजरा/ज्वार, श्रीगंगानगर के लिए ग्वार/दालें/बाजरा/ज्वार और कपास/मूंगफली/ग्वार/चावल/दालें और ग्वार/ हनुमानगढ़ जिले के लिए दालें/बाजरा/ज्वार और कपास/ग्वार/दालें/बाजरा/ज्वार प्रमुख फसलें/फसल प्रणालियाँ हैं जो खरीफ सीजन के दौरान अधिकतम क्षेत्र को कवर करती हैं। इसी प्रकार, रबी सीजन के लिए, तारामीरा/सरसों/चना को बीकानेर और चूरू जिलों के लिए प्रमुख

वैकल्पिक भूमि उपयोग योजना के रूप में प्रस्तावित किया गया है, जबकि गेहूं/जौ/सरसों/जई/सब्जियां और चना/तारामीरा/सरसों/गेहूं/जौ श्रीगंगानगर और हनुमानगढ क्रमशः के लिए प्रमुख वैकल्पिक भूमि उपयोग योजना के रूप में प्रस्तावित हैं। रेत के टीलों और अंतर-डुनल क्षेत्र का उपयोग चारागाह और सामुदायिक वन विकास के लिए किया जा सकता है जो शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र में छोटे जुगाली करने वाले जानवरों (भेड़ और बकरी) और स्यूडोर्यूमिनेंट (ऊंट) को सहारा दे सकता है। इसके अलावा, हवा के कटाव और मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए झाड़ियों और मरूद्भिद पौधों की उपयुक्त प्रजातियों को रोपने का प्रस्ताव है।

इस अध्ययन के प्रमुख परिणाम बीकानेर संभाग के लिए डिजिटल मृदा संसाधन डेटाबेस और मृदा-स्थल उपयुक्तता-आधारित भूमि उपयोग योजना हैं। उपयोग में आसान ये समाधान किसानों, योजनाकारों और कार्यान्वयनकर्ताओं को विकास प्रयासों को बढ़ाने, भूमि क्षरण तटस्थता हासिल करने और जलवायु परिवर्तन से निपटने, खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ लाभप्रदता बढ़ाने में मदद करेंगे। इस अध्ययन में दिए गए सुझाव न केवल फसल उत्पादकता और आय बढ़ाने में मदद करेंगे बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधन आधार की सुरक्षा में भी मदद करेंगे। शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र के प्रत्येक जिले के लिए समग्र विकास योजना के एक भाग के रूप में सिफारिशों को अपनाया जा सकता है।

“स्वस्थ मिट्टी, सुरक्षित भविष्य।”

५

विदर्भ क्षेत्र, महाराष्ट्र में भूमि उपयोग योजना हेतु भूमि संसाधन सूची सतत

एम.एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर. के. नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना,
एच. एल. खरबीकर,सिरिसा अडमाला, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण और भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर440033

पिछले कुछ दशकों के दौरान, भारत कृषि क्षेत्र में प्रमुख वैश्विक स्तर पर उभरा है। फिर भी इस स्थिति को बनाए रखने के लिए, देश के कृषि क्षेत्र को कृषि उत्पादकता बढ़ाने, ग्रामीण गरीबी को कम करने और खाद्य सुरक्षा आवश्यकताओं के जवाब में सतत कृषि विकास सुनिश्चित करने की तीन महत्वपूर्ण चुनौतियों का ध्यान रखना होगा। सरकार की हालिया पहल, जैसे किसानों की आय दोगुनी करना, प्रति बूंद अधिक फसल, जलवायु-लचीला/ स्मार्ट कृषि, भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करना, आदि को ग्रामीण भारत के कृषक समुदायों के उत्थान के लिए निर्देशित किया गया है, विशेष रूप से संसाधन विहीन क्षेत्रों के सबसे कमजोर किसानों को लक्षित किया गया है। हालाँकि, लंबे समय में इन प्रयासों की सफलता अन्य बातों के साथ-साथ संसाधन प्रबंधन के साइट-विशिष्ट कार्यान्वयन और आवश्यक तकनीकी हस्तक्षेप पर निर्भर करती हैं।

महाराष्ट्र के विदर्भ कृषि के क्षेत्र में किसानों व्दारा संसाधनों के प्रभावी उपयोग और साइट-विशिष्ट प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्थायी कृषि भूमि उपयोग योजनाओं को विकसित करने के लिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र की दो-तिहाई आबादी अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से कृषि और संबद्धित गतिविधियों पर ही आधारित है। एक ऐसा क्षेत्र जो अभी भी विकसित की राह देख रहा है और कृषक समुदाय को आजीविका सुरक्षा प्रदान करने और फसल उत्पादन में स्थिरता लाने के लिए एकीकृत कृषि-व्यवसाय मण्डल को बढ़ावा देने के लिए बुनियादी ढांचे के विकास के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के माध्यम से पुनरुद्धार की आवश्यकता है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन और भूमि क्षरण के संयुक्त प्रभाव के कारण विदर्भ क्षेत्र में खेतों की स्थिति और भी खराब हो रही है, जैसा कि अनियमित, कम और कभी-कभी उच्च तीव्रता वाली वर्षा की घटनाओं से स्पष्ट है जिसके परिणामस्वरूप उच्च अपवाह होता है। इस क्षेत्र के अधिकांश हिस्से किसी भी प्रमुख जल संसाधन से वंचित हैं। इसके अलावा, खेती योग्य क्षेत्र का केवल 10 प्रतिशत ही सुनिश्चित सिंचाई के अंतर्गत आता है, जिसके लिए टिकाऊ कृषि भूमि उपयोग योजनाओं को विकसित करने के लिए सर्वोत्तम संभव विकल्प के रूप में मृदा संसाधन-आधारित वर्षा आधारित कृषि प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

स्थायी साइट-विशिष्ट भूमि उपयोग योजनाओं के विकास में भूमि संसाधनों के इष्टतम उपयोग के लिए बड़े पैमाने पर जानकारी की उपलब्धता शामिल है और रिमोट सेंसिंग (आरएस), भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस), डेटा खनन और माडलिंग एवं उन्नत उपकरणों की मदद से समृद्ध विरासत मिट्टी डेटाबेस की नई जानकारी एकत्र करने में एक सिंहावलोकन प्रदान करती है जिससे क्षेत्र के प्रत्येक जिले के भूमि संसाधनों को डिजिटल और मात्राबद्ध तरीके से फसल योजना एवं फसल चयन करने, जल संरक्षण उपायों को तय करने और उचित भूमि उपयोग चुनने में सहायता मिलती है।
इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य एक उच्च-रिजल्यूशन डिजिटल भूमि संसाधन सूची और सुझाव उत्पन्न करना और पहले चरण में मिट्टी पर विरासत डेटा को एकत्रित, डिजिटलीकृत और भू-संदर्भित किया गया। दूसरे चरण में, पूरे क्षेत्र में मिट्टी बनने की प्रक्रियाओं को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण पर्यावरणीय सहसंयोजकों की परिवर्तनशीलता का पता लगाने के लिए जीआईएस की मदद से आरएस डेटा का विश्लेषण किया गया। विदर्भ क्षेत्र के ग्यारह में मृदा सर्वेक्षण किया गया और सभी चयनित प्रोफाइलों के प्रत्येक क्षितिज से मिट्टी का नमूने लेकरएकत्र किए गए कुल 861 मिट्टी के नमूनों का प्रयोगशाला में विश्लेषण किया गया।
डिजिटल मृदा मानचित्रण तकनीक का उपयोग नौ प्रमुख मृदा भौतिक-रासायनिक गुणों के स्थानिक वितरण मानचित्र को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। उच्च रिजल्यूशन (30 मीटर) पर वैश्विक मृदा मानचित्र विनिर्देशों के अनुसार छह मानक जैसे गहराई, पीएच, ईसी, एसओसी, रेत, गाद, मिट्टी, उपलब्ध जल क्षमता (एडब्ल्यूसी), और सीएसीओ आदि पर विश्लेषण करके एकत्रित डेटा के उप-सेट का उपयोग करके मण्डलों को मान्य किया जाता है। रिपोर्ट में सुझाए गए जल संसाधन विकास के लिए ड्रेन लाइन उपचार/ उपाय और मिट्टी और जल संरक्षण योजनाएं चार मापदंडों मिट्टी की गहराई, मिट्टी की सामग्री, ढलान, और भूमि उपयोग। पर आधारित रहता हैं, अर्थात् जीआईएस वातावरण में विश्लेषणात्मक पदानुक्रमित प्रक्रिया का उपयोग करके क्षेत्र में उगाई जाने वाली बीस प्रमुख फसलों के लिए भूमि उपयुक्तता मूल्यांकन किया गया था, और प्रस्तावित कृषि भूमि उपयोग योजनाओं को तैयार

करने के लिए विभिन्न सूचना परतों को एकीकृत करके फसल उपयुक्तता मानचित्र तैयार किए गए थे। अध्ययन के कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

अकोला जिले की मिट्टी बहुत गहरी (59.4%) है, इसके बाद मध्यम से गहरी (28.1%) और बहुत उथली (12.1%), महीन से बहुत बारीक मिट्टी वाली मिट्टी (94.5%) है जो उच्च एडब्ल्यूसी (99.0%) से जुड़ी है। पीएच मिट्टी की प्रकृति थोड़ी क्षारीय से लेकर क्षारीय और चनेदार है। जिले की अधिकांश मिट्टी (84.1%) की एसओसी सामग्री मध्यम (0.5 से 0.75%) और उसके बाद निम्न (<0.5%) है।

- अमरावती जिले की मिट्टी प्रकृति में थोड़ी खारी और चूनायुक्त है। अधिकांश मिट्टी थोड़ी क्षारीय (83.8%) है। मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, एसओसी, पीएच और मिट्टी की केल्षियम कारबोनेट सामग्री क्रमशः 14 से 150 सेमी, 26.5 से 75.2%, 0.32 से 1.57:, 6.5 से 8.6 और 3.5 से 16.3% तक भिन्न थी।
- भंडारा जिले की मिट्टी बहुत गहरी (85%) से गहरी (14.5%) है और गहराई 55 से 143 सेमी तक है। मिट्टी की मात्रा 27 से 48% तक होती है और लगभग 2.65 लाख हेक्टेयर क्षेत्र (89.7%) में 35-45% की सीमा में उच्च मिट्टी होती है। अधिकांश मिट्टी (84.8%) में मध्यम एसओसी के साथ मिट्टी गैर-कैलकेरियस, तटस्थ से थोड़ी क्षारीय होती है।
- बुलढाणा जिले की मिट्टी निम्न से मध्यम एसओसी के साथ विभिन्न तहसीलों में उथली (55.8), मध्यम गहरी (29.3%) और गहरी (10.2) है। मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, उपलब्ध पानी की क्षमता, एसओसी, पीएच और मिट्टी की कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः 16 से 145 सेमी, 26 से 64%, 10.6 से 18.3%, 0.29 से 1.26%, 6.9 से 8.8 और 3.3 से 15.5% तक भिन्न थी।
- चंद्रपुर जिले की मिट्टी गहरी से बहुत गहरी (89.3%) है, जिवती को छोड़कर, जहां, उथली मिट्टी तहसील के 41% हिस्से पर है। एसओसी सामग्री में मिट्टी निम्न से मध्यम होती है। जिले के प्रमुख भाग में मिट्टी में उपलब्ध पानी की क्षमता, निम्न से मध्यम (93.3%) है। मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, उपलब्ध पानी की क्षमता, एसओसी, पीएच और मिट्टी की कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः 32 से 144 सेमी, 17.0 से 64.0%, 7.8 से 16.2%, 0.32 से 1.45%, 5.8 से 8.6 और 0.13 से 16.8% तक भिन्न थी।
- गढ़चिरौली जिले की मिट्टी, सामान्य तौर पर, सभी तहसीलों में गहरी (62.2%) से लेकर बहुत गहरी (35.8%) तक है। एसओसी सामग्री में मिट्टी मध्यम (67.6%), निम्न (20.1%) से उच्च (12.4%) है। जिले के प्रमुख भागों (94.3%) में मिट्टी में एडब्ल्यूसी सामग्री मध्यम से उच्च है।
- गोंदिया जिले की मिट्टी गैर-कैलकेरियस, बहुत गहरी (76.0%) से गहरी (23.9%) और मध्यम से उच्च एसओसी सामग्री (98.9%) है। थोड़ी अम्लीय मिट्टी मौजूद है, ज्यादातर जिले के पूर्वी भाग में। जिले के एक बड़े हिस्से में उपलब्ध पानी की क्षमता की सामग्री मध्यम (75.3%) से निम्न (24.7%) है।
- नागपुर जिले की मिट्टी गहरी से बहुत गहरी (78.8%) है और गहराई 14 से 140 सेमी तक है। मिट्टी की मात्रा 25.0 से 70.0% तक भिन्न थी, और यह जिले के पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग तक बढ़ी। अधिकांश मिट्टियाँ चने वाली (64.4:) हैं। अधिकांश मिट्टी का पीएच थोड़ा क्षारीय (89.9%) है। सामान्यतः मिट्टी में कार्बनिक कार्बन की मात्रा मध्यम (85.9%) से उच्च (13.5%) पाई गई।
- वर्धा जिले की मिट्टी गहरी से बहुत गहरी (69:) है। जिले की मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, एसओसी, पीएच और कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः 17 से 146 सेमी, 29.0 से 72.0%, 0.30 से 1.59%, 6.8 से 8.9 और 1.8 से 22.1% तक थी। अधिकांश मिट्टी (99%) एसओसी सामग्री में मध्यम (0.5 से 0.75%) से उच्च (>0.75%) हैं।
- वाशिम जिले की मिट्टी मध्यम गहरी (39.0%), उथली (37.5%) और मध्यम से उच्च कार्बनिक कार्बन सामग्री के साथ गहरी से बहुत गहरी (23.5%) है। मिट्टी में उपलब्ध पानी की क्षमता सामग्री (99.7%) मध्यम है ऊँचे तक. मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, उपलब्ध पानी की क्षमता, एसओसी, पीएच और मिट्टी की के कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः 22 से 135 सेमी, 28 से 64%, 10.7 से 16.4%, 0.29 से 1.32%, 7.0 से 8.7 और 3.3 से 12.5% तक भिन्न थी। जिले में लवणता का कोई खतरा नहीं है।

- यवतमाल जिले की मिट्टी बहुत गहरी (27.8%), मध्यम गहरी (20.9%) और उथली से बहुत उथली (26.2%) है। अधिकांश मिट्टी में एसओसी सामग्री मध्यम (87.0) है। उपलब्ध पानी की क्षमता सामग्री मध्यम से उच्च (95.6%) है। मिट्टी की गहराई, मिट्टी की मात्रा, उपलब्ध पानी की क्षमता, एसओसी, पीएच और मिट्टी की कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः 17 से 146 सेमी, 23.0 से 69.0%, 9.5 से 17.4, 0.37 से 1.35%, 6.9 से 8.6 और 2.5 से 19.3% तक भिन्न थी।
- विदर्भ क्षेत्र में मिट्टी की गहराई 14 से 151 सेमी और अधिकांशतः कृषि मिट्टी गहरी से बहुत गहरी हैं। इसके बाद मध्यम गहरी मिट्टी भी है। उथली मिट्टी की गहराई बुलढाणा (55.8%), वाशिम (37.5%) और यवतमाल जिलों के कुछ हिस्सों (26.2%) के प्रमुख हिस्सों में है।

पूरे विदर्भ क्षेत्र में चिकिनी (क्ले) मिट्टी की मात्रा जगह-जगह पर भिन्न-भिन्न है और औसतन 17 से 75: तक है। क्ले मिट्टी की मात्रा में स्थानिक भिन्नता से पता चलता है कि पूर्वी विदर्भ (गढ़चिरौली, भंडारा, गोंदिया और चंद्रपुर जिले का हिस्सा) की मिट्टी में पश्चिमी विदर्भ (बुलढाणा का दक्षिणी भाग को छोडकर नागपुर, अमरावती, वाशिम, वर्धा, अकोला, यवतमत को छोड़कर) की तुलना में मिट्टी की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम है। इसी तरह का पैटर्न उपलब्ध पानी की क्षमता में भी देखा गया है। पूर्वी और पश्चिमी विदर्भ में मिट्टी की प्रतिक्रिया (पीएच) और केल्शियम कारबोनेट दोनों में अलग-अलग पैटर्न देखा गया है। पूर्वी विदर्भ में थोड़ा अम्लीय से तटस्थ पीएच की विशेषता है, जबकि, पश्चिमी विदर्भ में तटस्थ से थोड़ा क्षारीय पीएच देखा गया है। पूर्णा घाटी क्षेत्र को छोड़कर कुछ हिस्सों में उच्च पीएच के साथ खारा-सोडिक मिट्टी भी है। इसके अलावा, पूर्वी विदर्भ के जिलों में केल्शियम कारबोनेट की मात्रा बहुत कम (<5%) है, जबकि पश्चिमी विदर्भ के जिलों में केल्शियम कारबोनेट की मात्रा काफी अधिक है। पूरे विदर्भ क्षेत्र में एसओसी ज्यादातर मध्यम श्रेणी (0.5 से 0.75%) के अंतर्गत है। चंद्रपुर, अकोला के प्रमुख हिस्सों और बुलढाणा जिलों के कुछ हिस्सों की मिट्टी में एसओसी की मात्रा कम (<0.5%) है।

उचित भूमि प्रबंधन विकल्पों का सुझाव देते समय वर्षा, भूमि उपयोग, मिट्टी की जानकारी, ढलान, धारा क्रम आदि जैसे मापदंडों पर विचार करना आवष्यक होता है। सिफारिशों की सूची में कृषि योग्य और गैर-कृषि योग्य भूमि के लिए मिट्टी और जल संरक्षण उपायों का संयोजन शामिल है, जिसमें जल निकासी लाइनों पर 2962 चेक बांध और 463 नाला बांधध्जल संचयन संरचनाओं का निर्माण शामिल है। क्षेत्र के लगभग 40% टीजीए में कंपार्टमेंटल/ कंटूर बांध, फील्ड बांध-सह-खाई और खेत तालाब जैसे संरक्षण उपायों के संयोजन की सिफारिश की गई है। लगभग 39% कृषि योग्य और गैर-कृषि योग्य क्षेत्र में संरक्षण उपायों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है, जहां भूमि ढलान 3% से अधिक है।

फसल उपयुक्तता विश्लेषण प्रचलित फसल चयन के अनुरूप है जिसमें विभिन्न भागों में कपास, अरहर, सोयाबीन, चावल और सीट्रस शामिल हैं। क्षेत्र के लिए विकसित एक वैकल्पिक भूमि उपयोग योजना (एलयूपी) दो अलग-अलग फसल प्रणालियों प्रतिवादन करती है। खरीफ सीजन के दौरान क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी विदर्भ के लिए कपास एवं सोयाबीन आधारित और धान आधारित खेती की सिफारिष की गई है। जबकि, रबी मौसम में, पश्चिमी में चना/ गेहूं/ अलसी/ सब्जियाँ और पूर्वी विदर्भ में चावल/अलसी/चना/सब्जियाँ सबसे उपयुक्त फसलों की सिफारिष की गई है। लगातार बढ़ते कृषि लागत और जलवायु परिवर्तन के बीच, बाजरा जैसी फसलें खाद्य सुरक्षा और पोषण के लिए बहुत उपयुक्त पाई गई है। इसलिए, खरीफ और रबी के दौरान बाजरा और दालों जैसी कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों का सुझाव दिया जाता है। विशेष रूप से उथली गहराई और कम जल धारण क्षमता वाली सीमांत मिट्टी में। सुनिश्चित सिंचाई के तहत रबी मौसम के दौरान गेहूं चनाध्अलसी की खेती की सिफारिष की जाती है।

गैर-कृषि योग्य भूमि का उपयोग चारा उत्पादन और पशुपालन के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, ट्रेंचिंग जैसे पर्याप्त एसडब्ल्यूसी उपायों के साथ झाड़ियों और पेड़ों की उपयुक्त प्रजातियों के रोपण को कम करने का प्रस्ताव है। ऊंचे ढलानों पर निरंतर मिट्टी का कटाव, उचित स्थानों पर खेत के तालाबों में मछली पालन, बकरी पालन, रेशम उत्पादन और पिछवाड़े मुर्गीपालन जैसी पूरक आजीविका गतिविधियों की भी सिफारिश की जाती है।

इस अभ्यास के मुख्य परिणाम हैं: (ए) डिजिटल मृदा संसाधन डेटाबेस, (बी) स्थानिक मिट्टी और जल संरक्षण योजना, और (सी) विदर्भ क्षेत्र के लिए मिट्टी-स्थल उपयुक्तता-आधारित भूमि उपयोग योजनाएं। बुलढाणा का दक्षिणी भाग में, ये उपयोगकर्ता-अनुकूल उत्पाद किसानों, योजनाकारों और निष्पादकों को विकास प्रयासों को बढ़ाने, भूमि क्षरण को रोकने और जलवायु परिवर्तन से निपटने

में सहायता करते है। जिससे न केवल खाद्य और मिट्टी की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम है । इसी तरह का पैटर्न उपलब्ध पानी की क्षमता में देखा गया है। पूर्वी और पश्चिमी विदर्भ में मिट्टी की प्रतिक्रिया (पीएच) और केल्शियम कारबोनेट सामग्री दोनों में अलग-अलग पैटर्न देखा गया है। पूर्वी विदर्भ में थोड़ा अम्लीय से तटस्थ पीएच की विशेषता है, जबकि, पश्चिमी विदर्भ में तटस्थ से थोड़ा क्षारीय पीएच की सूचना दी गई है (पूर्णा घाटी क्षेत्र को छोड़कर जिसमें अकोला और अमरावती जिलों के कुछ हिस्सों को शामिल किया गया है, जहां उच्च पीएच मान के साथ खारा-सोडिक मिट्टी है)। इसके अलावा, पूर्वी विदर्भ के जिलों में केल्शियम कारबोनेट की मात्रा बहुत कम (<5%) है, जबकि पश्चिमी विदर्भ के जिलों में केल्शियम कारबोनेट की मात्रा काफी अधिक है। पूरे विदर्भ क्षेत्र में एसओसी सामग्री ज्यादातर मध्यम श्रेणी (0.5 से 0.75%) के अंतर्गत है। चंद्रपुर, अकोला के प्रमुख हिस्सों और बुलढाणा जिलों के कुछ हिस्सों की मिट्टी में एसओसी की मात्रा कम (ढ0.5%) है।

उचित भूमि प्रबंधन विकल्पों का सुझाव देते समय वर्षा, भूमि उपयोग, मिट्टी की जानकारी, ढलान, धारा क्रम आदि जैसे मापदंडों पर विचार किया गया। सिफारिशों की सूची में कृषि योग्य और गैर-कृषि योग्य भूमि के लिए 14 मिट्टी और जल संरक्षण उपायों का संयोजन शामिल है, जिसमें जल निकासी लाइनों पर 2962 चेक बांध और 463 नाला बांधध्जल संचयन संरचनाओं का निर्माण शामिल है। क्षेत्र के लगभग 40% टीजीए में कंपार्टमेंटल/ कंटूर बांध, फील्ड बांध-सह-खाई और खेत तालाब जैसे संरक्षण उपायों के संयोजन की सिफारिश की गई है। लगभग 39% कृषि योग्य और गैर-कृषि योग्य क्षेत्र में संरक्षण उपायों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है, जहां भूमि ढलान 3% से अधिक है। ये उपयोगकर्ता-अनुकूल उत्पाद किसानों, योजनाकारों और निष्पादकों को विकास प्रयासों को बढ़ाने, भूमि क्षरण को रोकने और जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायता करेंगे, जिससे न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित होगी, बल्कि कृषक समुदाय की लाभप्रदता भी बढ़ेगी। अंत में, इस कठोर अभ्यास के माध्यम से उत्पन्न उच्च-रिजॉल्यूशन जानकारी विदर्भ क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों की पूरी क्षमता का दोहन करने के लिए सही प्रौद्योगिकी को सही स्थान पर स्थानांतरित करने में सक्षम बनाने के लिए एक मजबूत मंच के रूप में कार्य करेगी जो हितधारकों के लिए वरदान साबित हो सकती है।

“धरती की सेहत सुधरेगी, तभी खेती में समृद्धि फूलेगी।”

“मिट्टी की उर्वरता जितनी अधिक, किसान उतना अधिक मजबूत।”

६

गुजरात की मृदायें और उपयुक्त फसलें

शिव पाल सिंह, बी. एल. मीना, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, लाल चन्द मालव, बृजेश यादव एवं सुरेन्द्र सिंह राठौड़
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो-क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर
कृषि विभाग, राजस्थान सरकार

गुजरात की कृषि और मृदा का महत्वँ:

गुजरात की मृदा विविधतापूर्ण और भौगोलिक स्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। यहाँ की मिट्टी के प्रकार और उपयुक्त फसलें इस बात पर निर्भर करती हैं कि क्षेत्र में किस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। गुजरात में विभिन्न प्रकार की मिट्टी हैं, जैसे काली मिट्टी, जलोढ़ मिट्टी, लाल मिट्टी, रेतीली मिट्टी, और लवणीय मिट्टी। इन मिट्टियों में अलग-अलग फसलें उगाई जाती हैं। आइए हम गुजरात की प्रमुख मिट्टी के प्रकार और उनके लिए उपयुक्त फसलों पर चर्चा करें।

1. काली मृदा:

विशेषताए: काली मृदा, जिसे रेगुर मिट्टी भी कहा जाता है, गुजरात के सौराष्ट्र और कच्छ क्षेत्रों में पाई जाती है। यह मिट्टी ज्वालामुखीय चट्टानों से बनी होती है और इसमें जल धारण करने की क्षमता अधिक होती है। यह मिट्टी कपास की खेती के लिए बहुत उपयुक्त मानी जाती है।

उपयुक्त फसलें: काली मिट्टी में कपास की खेती प्रमुख है, विशेषकर गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में। इसके अलावा, इसमें सोयाबीन, ज्वार, मक्का, और तिल जैसी फसलें उगाई जा सकती हैं। रबी मौसम में गेहूं, चना, और तूर की फसलें भी उगाई जाती हैं।

कृषि तकनीके: काली मिट्टी में मृदा क्षरण को रोकने के लिए सतत सिंचाई तकनीक और जल संचयन का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, गहरी जुताई और नमी संरक्षण तकनीकों का उपयोग इस मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। काली मृदा में कपास और गेहूं की फसलें बारी-बारी से उगाई जा सकती हैं। यह फसल चक्र मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने और नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने में सहायक होता है। इसके अलावा, मूंगफली और तिल जैसे तिलहन फसलें भी कपास के बाद उगाई जा सकती हैं, जिससे मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति होती है।

2. जलोढ़ मृदा:

विशेषताएँ: जलोढ़ मिट्टी गुजरात के मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में पाई जाती है, विशेषकर साबरमती, तापी, और नर्मदा नदियों के किनारे। यह मिट्टी नदियों के द्वारा लाई गई होती है और अत्यधिक उपजाऊ होती है।

उपयुक्त फसलें: धान और गेहूं जलोढ़ मिट्टी में धान और गेहूं की अच्छी फसल होती है। गन्ने की खेती इस उपजाऊ मिट्टी में बहुत लाभदायक होती है। मक्का और तम्बाकू भी जलोढ़ मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाए जाते हैं। आलू, टमाटर, और प्याज जैसी सब्जियाँ भी इस मिट्टी में उगाई जाती हैं।

कृषि तकनीकें: जलोढ़ मिट्टी में फसलों की सिंचाई के लिए नदी और नहरों के जल स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, उर्वरक प्रबंधन और मृदा परीक्षण के आधार पर फसलों की उर्वरता को बनाए रखा जा सकता है। कृषि के लिए ड्रिप सिंचाई और सतही सिंचाई प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है। जलोढ़ मृदा में धान और गेहूं का फसल चक्र आमतौर पर उपयोग किया जाता है। धान के बाद गेहूं की खेती न केवल मृदा की संरचना को बनाए रखती है, बल्कि यह फसल चक्र जल संरक्षण और पोषक तत्व प्रबंधन के लिए भी महत्वपूर्ण है। साथ ही, सब्जियों की खेती भी धान और गेहूं के बीच अंतराल में की जा सकती है।

3. लाल मृदा:

विशेषताएँ: लाल मिट्टी गुजरात के दक्षिणी क्षेत्रों, जैसे वलसाड, नवसारी, और डांग जिलों में पाई जाती है। इस मिट्टी में लोहे के आक्साइड की उपस्थिति के कारण इसका रंग लाल होता है। यह मिट्टी थोड़ी अम्लीय होती है और जैविक तत्वों की कमी हो सकती है।

उपयुक्त फसलें: लाल मिट्टी में धान की खेती आम है, खासकर दक्षिणी गुजरात में। लाल मिट्टी में मूंगफली की खेती भी की जाती है। गन्ने की खेती लाल मिट्टी में काफी लाभदायक होती है। तम्बाकू और तिल ये फसलें भी इस मिट्टी में उगाई जाती हैं।

कृषि तकनीकें: लाल मिट्टी में कृषि के लिए उर्वरकों का संतुलित उपयोग और सिंचाई की उचित व्यवस्था आवश्यक होती है। जल संचयन और भू-जल पुनर्भरण तकनीकों का उपयोग इस मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। लाल मिट्टी

में गन्ना और मूंगफली का फसल चक्र अपनाया जा सकता है। गन्ना एक लंबी अवधि की फसल है, जबकि मूंगफली अल्पकालिक फसल होती है, जो मृदा में जैविक तत्वों की पूर्ति करती है। इसके अलावा, तंबाकू और धान की खेती भी लाल मृदा में बारी-बारी से की जा सकती है।

4. रेतीली मृदा:

विशेषताएँ: रेतीली मिट्टी मुख्यतः गुजरात के कच्छ और उत्तरी गुजरात क्षेत्रों में पाई जाती है। इस मिट्टी में जल धारण क्षमता कम होती है, लेकिन यह हल्की और जल्दी गरम होने वाली मिट्टी है।

उपयुक्त फसलें: बाजरा रेतीली मिट्टी में उगाने के लिए सबसे उपयुक्त फसल है। ग्वार की खेती भी इस मिट्टी में सफलतापूर्वक की जा सकती है। मूंग जैसी दलहनी फसलें भी इस मिट्टी में उगाई जाती हैं। खजूर और अन्य सूखे क्षेत्र की फसलें भी रेतीली मिट्टी में उगाई जा सकती हैं।

कृषि तकनीकें: रेतीली मृदा में उन फसलों को उगाना उपयुक्त होता है, जिन्हें कम पानी की आवश्यकता होती है। इस मिट्टी में प्रमुख रूप से बाजरा, ग्वार, जौ, और ग्वारफली जैसी फसलें उगाई जाती हैं। इसके अलावा, सिंचाई के बेहतर साधन होने पर मूंगफली और सरसों भी उगाई जाती हैं। सूक्ष्म सिंचाई तकनीक और वर्षा जल संचयन का उपयोग इस मृदा में कृषि को सफल बना सकता है। ग्रीष्मकालीन फसल के रूप में बाजरा के बाद ग्वार की खेती की जाती है। इन फसलों को कम पानी की आवश्यकता होती है, जिससे रेतीली मृदा में जल प्रबंधन की समस्या को हल किया जा सकता है। इसके अलावा, खजूर और अन्य फसलों की खेती भी बारी-बारी से की जा सकती है।

5. लवणीय मृदा:

विशेषताएँ: गुजरात के कच्छ और तटीय क्षेत्रों में लवणीय मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी अत्यधिक लवणीय होती है और इसमें जल निकासी की कमी होती है। लवणीय मिट्टी में सामान्य फसलें उगाना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

उपयुक्त फसलें: खजूर की खेती लवणीय मिट्टी में भी की जा सकती है। ग्वार जैसी नमक-सहिष्णु फसलें इस मिट्टी में उगाई जाती हैं। ज्वार और बाजरा ये फसलें भी इस मिट्टी में उगाई जा सकती हैं। लवणीय मृदा में खजूर और ग्वार की फसलें एक साथ उगाई जा सकती हैं। यह फसल चक्र मृदा की लवणता को नियंत्रित करने और मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। लवणीय मृदा में सुधार के लिए जैविक खादों का उपयोग करके फसल चक्र को और बेहतर बनाया जा सकता है।

गुजरात की मृदा विविध और क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर विभाजित है। काली मिट्टी कपास और मूंगफली के लिए, जलोढ़ मिट्टी धान और गेहूं के लिए, लाल मिट्टी मूंगफली और गन्ने के लिए, और रेतीली मिट्टी बाजरा और ग्वार जैसी फसलों के लिए उपयुक्त है। लवणीय मिट्टी में नमक-सहिष्णु फसलों की खेती की जाती है। इन मृदाओं के अनुसार किसानों ने अपनी खेती की तकनीकें विकसित की हैं, जिससे गुजरात की कृषि में वृद्धि हो रही है।

मृदा संरक्षण और कृषि प्रबंधन: गुजरात में मृदा संरक्षण और कृषि प्रबंधन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि राज्य की भू-परिस्थितियाँ और जलवायु विविधता कृषि उत्पादन पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती हैं। राज्य के विभिन्न भागों में मृदा के विभिन्न प्रकार पाए जाते हैं, जिनमें काली, लाल, जलोढ़, रेतीली और लवणीय मृदा शामिल हैं। इन मृदाओं को उपजाऊ बनाए रखने और उनकी गुणवत्ता को संरक्षित करने के लिए मृदा संरक्षण और उन्नत कृषि प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

७

दक्षिण गुजरात क्षेत्र के लिए सतत कृषि हेतु भूमि संसाधन सूची और भूमि उपयोग योजना

अभिषेक जांगिड़, महावीर नोगिया, बृजेश यादव, आर. एल. मीणा, लाल चन्द मालव, आर. पी. शर्मा एवं बी. एल. मीना
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो-क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर

भारत में हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त की गई है, लेकिन इसके साथ कई पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं, जिनमें प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट, पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं का अवमूल्यन, जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती शुष्कता और जल संकट, मृदा की उर्वरता में गिरावट, जलभराव, प्रदूषण, कीट और रोगों का तीव्र होना, और सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ शामिल हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, भारत कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर और किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य निर्धारित कर रहा है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भूमि उपयोग को अनुकूलित करने हेतु मृदा के लक्षण, वितरण, सीमा और सीमाओं की गहरी समझ आवश्यक है। भूमि संसाधन सूची भूमि उपयोग के अनुकूलन में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है, जो प्रभावी भूमि प्रबंधन के लिए आवश्यक है। भारत में कृषि विकास योजनाओं की विफलता का एक प्रमुख कारण स्थान-विशेष डेटा और स्थिति-विशेष सिफारिशों की कमी है।

दक्षिण गुजरात क्षेत्र के लिए भूमि संसाधन सूची और भूमि उपयोग योजना : सतत कृषि के लिए पर प्रस्तुत रिपोर्ट क्षेत्र की मृदा और जल संसाधनों का गहन विश्लेषण प्रदान करती है, जिसका उद्देश्य सतत भूमि उपयोग और कृषि योजना को बढ़ावा देना है। यह पहल राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर और इसके क्षेत्रीय केंद्र, उदयपुर द्वारा की गई थी, जिसका उद्देश्य सतत विकास के समर्थन के लिए विस्तृत डिजिटल मृदा जानकारी तैयार करना था। रिपोर्ट के मुख्य उद्देश्य मृदा संसाधनों की वैज्ञानिक सूची और डेटाबेस का निर्माण, क्षेत्र की संभावनाओं और सीमाओं की पहचान, और उन भूमि उपयोग योजनाओं का विकास जो फसल उपयुक्तता, मृदा और जल संरक्षण तकनीकों को ध्यान में रखें।

परियोजना मे अनुसरण की गई प्रणालीकृत तीन-स्तरीय दृष्टिकोण निम्नलिखित थे।

1. **आधारभूत डेटा संकलनः** इसमें मृदा के लक्षण, भूमि रूप, और भूमि उपयोग पैटर्न का समावेश था।
2. **डिजिटल मृदा मानचित्रणः** इसमें मृदा सर्वेक्षण, प्रयोगशाला विश्लेषण और मृदा गुणों का मॉडलिंग शामिल था।
3. **जिला-वार भूमि उपयोग योजना निर्माणः** इसमें फसल उपयुक्तता विश्लेषण, कृषि भूमि उपयोग योजनाओं का विकास और मृदा तथा जल संरक्षण रणनीतियाँ शामिल थीं।

दक्षिण गुजरात क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति और मृदा संसाधन:

दक्षिण गुजरात क्षेत्र 20°07 उत्तर अक्षांश से 22°14 उत्तर अक्षांश और 72°44 पूर्व देशांतर से 74°19 पूर्व देशांतर के बीच स्थित है, और इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 21,338 किमी² है। यह क्षेत्र सात जिलों में विभाजित है। भरूच, डांग, नर्मदा, नवसारी, सूरत, तापी, और वलसाड, जो गुजरात राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 10.87 प्रतिशत है। अरब सागर के निकटता के कारण इस क्षेत्र की जलवायु, मृदा और वनस्पति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप विविध स्थलाकृतियाँ और मृदा प्रकार उत्पन्न होते हैं। दक्षिण गुजरात की मृदा संसाधन विविध और उर्वर हैं, जो क्षेत्र की कृषि उत्पादकता और आर्थिक गतिविधियों में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

मृदा के महत्वपूर्ण लक्षणों का वितरण: दक्षिण गुजरात के विभिन्न जिलों में मृदा की गहराई, बनावट, बालू, सिल्ट, चिकनी मिट्टी, उपलब्ध जल क्षमता, पीएच, विद्युत चालकता, मृदा कार्बन, और कैल्शियम कार्बोनेट जैसे लक्षणों का वितरण रिपोर्ट में विस्तृत रूप से दिया गया है।

- **मृदा की गहराईः** 100-150 सेमी गहरी मृदा 901.30 हजार हेक्टेयर (कुल क्षेत्रफल का 42.24 प्रतिशत) में पाई जाती है, जबकि मध्यम उथली मृदा (13.86 प्रतिशत) और मध्यम गहरी मृदा (12.77 प्रतिशत) भी उपलब्ध है।
- **मृदा की बनावटः** प्रमुख रूप से बलुई मृदा (785.61 हजार हेक्टेयर, 36.82 प्रतिशत) और बलुई दोमट मृदा (29.12 प्रतिशत) पाई जाती है।
- **जल क्षमताः** क्षेत्र के अधिकांश हिस्से (50.81 प्रतिशत, यानी 1084.17 हजार हेक्टेयर) में उपलब्ध जल क्षमता 8-10 प्रतिशत के बीच पाया जाता है।

- **कण आकार वितरणः** 59.00 प्रतिशत क्षेत्र में 20-40 प्रतिशत बालू, 50.39 प्रतिशत क्षेत्र में 20-35 प्रतिशत सिल्ट, और 42.13 प्रतिशत क्षेत्र में 35-45 प्रतिशत चिकनी मिट्टी पाई जाती है।
- **पीएचः** अधिकांश क्षेत्र (30.20 प्रतिशत, यानी 644.34 हजार हेक्टेयर) में मृदा का पीएच मध्यम क्षारीय है, इसके बाद तटस्थ (16.33 प्रतिशत), हल्का क्षारीय (15.28 प्रतिशत), हल्का अम्लीय (8.93 प्रतिशत), और मध्यम अम्लीय (2.09 प्रतिशत) मृदा पाई जाती है।
- **विद्युत चालकताः** 69.59 प्रतिशत क्षेत्र में विद्युत चालकता 2 से कम डेसीसीमेंस प्रति मीटर पाया गया है, जिससे संकेत मिलता है कि क्षेत्र में लवणता का कोई महत्वपूर्ण खतरा नहीं है।
- **मृदा जैविक कार्बनः** अधिकांश क्षेत्र में मृदा कार्बन की मात्रा मध्यम (0.5-0.75 प्रतिशत) और उच्च (0.75-1.0 प्रतिशत) श्रेणियों में पाई जाती है।
- **कैल्शियम कार्बोनेट:** क्षेत्र की मृदा में 5-15 प्रतिशत (42.57 प्रतिशत) और 1-5 प्रतिशत (27.66 प्रतिशत) कैल्शियम कार्बोनेट पाया जाता है, जो संभावित रूप से मृदा सोडिसिटी के विकास का कारण बन सकता है।

गैर कृषि योग्य भूमि:

क्षेत्र की 26.82 प्रतिशत भूमि (निर्मित क्षेत्र, नदी, जल निकाय, वन, दलदल/मार्श/लिटोरल/मैंग्रोव क्षेत्र) गैर कृषि योग्य भूमि (कृषि योग्य नहीं) है, जिसे पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने और जैव विविधता के संरक्षण के लिए संरक्षित और प्रबंधित किया जाना चाहिए। यह रिपोर्ट दक्षिण गुजरात के मृदा और जल संसाधनों का गहन विश्लेषण प्रदान करती है और इस क्षेत्र के सतत कृषि विकास हेतु आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध कराती है।

दक्षिण गुजरात क्षेत्र की भूमि संसाधन विशेषताएँ और कृषि विकास हेतु योजना: दक्षिण गुजरात क्षेत्र, जो सात जिलों में विभाजित है, अपनी विविध मृदा विशेषताओं और जलवायु परिस्थितियों के कारण विभिन्न कृषि संभावनाओं और सीमाओं का सामना करता है। प्रत्येक जिला अपनी भौगोलिक और पारिस्थितिकीय विशेषताओं के अनुसार अलग-अलग मृदा गुणधर्म प्रदर्शित करता है,

दक्षिण गुजरात क्षेत्र की मृदा विशेषताएँ:

- **भरूच जिलाः**
  मृदा की गहराई 100-150 सेंटीमीटर है, जो गहरी मृदा वर्ग में आती है। मृदा की बनावट में प्रमुख रूप से बलुई और बलुई दोमट मृदा पाई जाती है। मृदा पीएच थोड़ा से लेकर मध्यम क्षारीय (7.5-8.5) है। मृदा जैविक कार्बन का स्तर कम से मध्यम है।
- **डांग जिला:** मृदा की गहराई 50-75 सेंटीमीटर, जो मध्यम उथली मृदा की श्रेणी में आती है। मृदा की बनावट में बलुई और बलुई दोमट मृदा शामिल है, और पीएच का स्तर मध्यम अम्लीय से हल्का अम्लीय (5.5-6.5) है। मृदा का जैविक कार्बन स्तर उच्च से बहुत उच्च पाया गया है।
- **नर्मदा जिलाः** इस क्षेत्र में बलुई दोमट मृदा पाई जाती है, जो हल्का अम्लीय से हल्का क्षारीय (6.0-7.5) पीएच में है। मृदा जैविक कार्बन का स्तर मध्यम से उच्च है।
- **नवसारी और सूरत जिले:**
  इन जिलों में मृदा गहरी (100-150 सेंटीमीटर) और बलुई दोमट प्रकार की होती है। मृदा की विद्युत चालकता तटस्थ से हल्की क्षारीय (6.5-7.5) है, और मृदा जैविक कार्बन का स्तर मध्यम से उच्च पाया जाता है।
- **तापी जिलाः**
  मृदा की गहराई 75-100 सेंटीमीटर (मध्यम उथली से मध्यम गहरी) है। मृदा की बनावट मुख्य रूप से बलुई है, और पीएच तटस्थ से हल्का क्षारीय (6.5-7.5) है। मृदा जैविक कार्बन का स्तर मध्यम से उच्च है।
- **वलसाड जिलाः**
  गहरी मृदा, मुख्यतः बलुई दोमट की बनावट वाली पाई जाती है। पीएच हल्का अम्लीय से हल्का क्षारीय (6.0-7.5) है, और मृदा जैविक कार्बन का स्तर मध्यम से उच्च है।

कृषि संबंधी बाधाएँ:

दक्षिण गुजरात में कृषि संबंधी प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित हैः

- **मृदा क्षरण :**असंवेदनशील भूमि प्रबंधन और वनों की अतिकटाई के कारण मृदा क्षरण की समस्या बढ़ रही है, जिससे मृदा की उर्वरता में गिरावट आ रही है।
- मृ**दा की लवणता और क्षारीयता :**कई क्षेत्रों में मृदा की लवणता और क्षारीयता के कारण फसल उत्पादन में समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। यह मुख्यतः तटीय क्षेत्रों में जल के लवणीय प्रभाव के कारण है।
- **अत्यधिक कृषि उत्पादनः** तीव्र कृषि गतिविधियाँ और भूमि की अनुकूलता का अत्यधिक दोहन मृदा की उर्वरता में कमी का कारण बन रहा है।
- **मानसून पर निर्भरताः** इस क्षेत्र में कृषि मुख्य रूप से मानसून की बारिश पर निर्भर है, जिसके कारण सूखा या असमान वर्षा फसल विफलता का कारण बन सकती है।

भूमि उपयोग योजना और सिफारिशें:

दक्षिण गुजरात क्षेत्र की भूमि संसाधनों के संभावनाओं और बाधाओं को ध्यान में रखते हुए, विभिन्न भूमि उपयोग विकल्पों का सुझाव दिया गया है। इन विकल्पों में फसल उपयुक्तता, जलवायु परिस्थितियाँ, मृदा की जैविक स्थिति, और जल संरक्षण तकनीकों को सम्मिलित किया गया है।

- **फसल उपयुक्तता का आकलनः** प्रमुख फसलों जैसे चावल, गेहूं, गन्ना, कपास, अरहर, चना, मूँगफली और फल फसलों के लिए विस्तृत फसल उपयुक्तता आकलन किया गया। प्रत्येक फसल के लिए उपयुक्त मृदा, जलवायु और जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभावों को ध्यान में रखते हुए योजनाएँ तैयार की गईं।
- **जल और मृदा संरक्षणः** जल और मृदा संरक्षण के उपायों में भूमिगत जल स्तर को बनाए रखने के लिए जल संचयन तकनीकें, मृदा संरक्षण उपाय जैसे कि कंटूर बंडिंग, जलधारण की क्षमता को बढ़ाने के लिए जैविक मृदा उर्वरक, और फसल चक्रण विधियों को प्रोत्साहित किया गया।
- **गैर कृषि योग्य भूमि के लिए वैकल्पिक खेती प्रणालियाँः** गैर कृषि योग्य भूमि के लिए वैकल्पिक खेती प्रणालियाँ जैसे बागवानी, बागवानी आधारित कृषि, और वृक्षारोपण की सिफारिश की गई। इसके अतिरिक्त, इन क्षेत्रों में मृदा और जल संरक्षण के लिए संरचनात्मक उपायों जैसे जल निकासी और जल संचयन का प्रस्ताव भी दिया गया।

निष्कर्ष और भविष्य की दिशा :

दक्षिण गुजरात क्षेत्र के भूमि संसाधन सूची और भूमि उपयोग योजना ने एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कृषि विकास की दिशा निर्धारित की है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य भूमि उपयोग को अनुकूलित करना और मृदा और जल प्रबंधन के द्वारा कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है। रिपोर्ट में संकलित डेटा जैसे डिजिटल मृदा मानचित्र, भूमि उपयोग जानकारी, और जलवायु डेटा का उपयोग करते हुए जिला-स्तरीय कृषि भूमि उपयोग योजनाएँ तैयार की गई हैं। इन योजनाओं में फसल उपयुक्तता, जल और मृदा संरक्षण तकनीकें, और कृषि अवसंरचना की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए विविध हस्तक्षेपों को प्राथमिकता दी गई है। इसके माध्यम से दक्षिण गुजरात में सतत कृषि विकास संभव है, जो मृदा और जल संसाधन के प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का समायोजन और कृषि उत्पादकता में सुधार को सुनिश्चित करेगा।

८

राजस्थान की मृदायें और उपयुक्त फसलें

शिव पाल सिंह, बी. एल. मीना, आर. पी. शर्मा, आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, बृजेश यादव,
अभिषेक जांगीड एवं सुरेन्द्र सिंह राठौड़
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो-क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर
कृषि विभाग, राजस्थान सरकार

राजस्थान की कृषि और मृदा का महत्वँ:

राजस्थान, भारत का सबसे बड़ा राज्य, अपनी विविध भूगोल और जलवायु स्थितियों के लिए जाना जाता है। यहां की मृदा विभिन्न प्रकार की होती है, जो यहां की कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मृदा की संरचना और गुणधर्मों के आधार पर खेती की जाती है, और प्रत्येक प्रकार की मिट्टी में कुछ विशेष फसलें उगाई जाती हैं। राजस्थान की मृदा का अध्ययन करना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह राज्य की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है। यहाँ की कृषि मुख्य रूप से जलवायु परिस्थितियों और मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है।

1. **मरुस्थलीय मृदा:**

विशेषताएँ: मरुस्थलीय मृदा राजस्थान के पश्चिमी हिस्से, विशेषकर थार मरुस्थल में पाई जाती है। यह मिट्टी अत्यधिक रेतयुक्त होती है और इसमें जैविक पदार्थों की कमी होती है। यह हल्की और संरचना में कमजोर होती है, जिससे इसमें जल धारण की क्षमता कम होती है। इसके अलावा, इस मिट्टी में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्वों की कमी होती है।

उपयुक्त फसलें: मरुस्थलीय मृदा में उन फसलों को उगाना उपयुक्त होता है, जिन्हें कम पानी की आवश्यकता होती है। इस मिट्टी में प्रमुख रूप से बाजरा, ग्वार, जौ, और ग्वारफली जैसी फसलें उगाई जाती हैं। इसके अलावा, सिंचाई के बेहतर साधन होने पर मूंगफली और सरसों भी उगाई जाती हैं। सूक्ष्म सिंचाई तकनीक और वर्षा जल संचयन का उपयोग इस मृदा में कृषि को सफल बना सकता है।

कृषि तकनीकें: मरुस्थलीय मृदा में जल प्रबंधन के लिए विशेष तकनीकें जैसे ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए जैविक खाद और कंपोस्ट का उपयोग करना लाभदायक होता है।

2. लाल और पीली मृदा

विशेषताएँ: लाल और पीली मिट्टी राजस्थान के दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्रों में पाई जाती है। इस मिट्टी का रंग इसमें उपस्थित लोहे के ऑक्साइड के कारण लाल होता है, जबकि नमी में कमी होने पर इसका रंग पीला हो जाता है। इस मिट्टी में उर्वरता की औसत क्षमता होती है, और इसमें जल धारण की क्षमता भी मध्यम होती है।

उपयुक्त फसलें: लाल और पीली मिट्टी में तिलहन (सरसों, मूंगफली), दलहन (चना, अरहर), कपास, और गन्ना जैसी फसलें उगाई जाती हैं। इस मिट्टी में सिंचाई के माध्यम से गेहूं और धान जैसी फसलें भी उगाई जा सकती हैं। इसका उपयोग बागवानी फसलों के लिए भी किया जाता है।

कृषि तकनीकें: लाल और पीली मिट्टी में कृषि के लिए उर्वरकों का संतुलित उपयोग और सिंचाई की उचित व्यवस्था आवश्यक होती है। जल संचयन और भू-जल पुनर्भरण तकनीकों का उपयोग इस मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

3. जलोढ़ मृदा:

विशेषताएँ: जलोढ़ मिट्टी राजस्थान के पूर्वी हिस्सों में पाई जाती है, विशेषकर जयपुर, अलवर, कोटा, और भरतपुर जिलों में। यह मिट्टी गंगा और यमुना नदियों के क्षेत्रों में बहकर आई होती है, इसलिए इसे बहुत उपजाऊ माना जाता है। जलोढ़ मिट्टी में जल धारण की क्षमता अधिक होती है और यह कृषि के लिए अत्यंत उपयुक्त होती है।

उपयुक्त फसलें: इस मिट्टी में गेहूं, धान, गन्ना, दलहन, तिलहन, सब्जियाँ और फलों की फसलें उगाई जा सकती हैं। सिंचाई की अच्छी व्यवस्था होने पर जलोढ़ मिट्टी में लगभग सभी प्रमुख फसलें उगाई जा सकती हैं। यह मिट्टी बहुवर्षीय फसलों के लिए भी उपयुक्त होती है।

कृषि तकनीकें: जलोढ़ मिट्टी में फसलों की सिंचाई के लिए नदी और नहरों के जल स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, उर्वरक प्रबंधन और मृदा परीक्षण के आधार पर फसलों की उर्वरता को बनाए रखा जा सकता है। कृषि के लिए ड्रिप सिंचाई और सतही सिंचाई प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है।

4. काली मृदा:

विशेषताएँ: काली मिट्टी राजस्थान के दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों में पाई जाती है, खासतौर पर कोटा और झालावाड़ जिलों में। इसे रेगुर मिट्टी भी कहा जाता है और यह मुख्य रूप से कपास की खेती के लिए प्रसिद्ध है। इस मिट्टी में जल धारण की उच्च क्षमता होती है और यह उष्णकटिबंधीय जलवायु में पाई जाती है।

उपयुक्त फसलें: काली मिट्टी में कपास की खेती प्रमुख है। इसके अलावा, इसमें सोयाबीन, ज्वार, मक्का, और तिल जैसी फसलें उगाई जा सकती हैं। रबी मौसम में गेहूं, चना, और तूर की फसलें भी उगाई जाती हैं।

कृषि तकनीकें: काली मिट्टी में मृदा क्षरण को रोकने के लिए सतत सिंचाई तकनीक और जल संचयन का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, गहरी जुताई और नमी संरक्षण तकनीकों का उपयोग इस मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

5. पथरीली और पर्वतीय मृदा:

विशेषताएँ: यह मिट्टी मुख्य रूप से अरावली पर्वत श्रृंखला के ऊपरी क्षेत्रों में पाई जाती है। इस मिट्टी में जल धारण की क्षमता कम होती है और इसमें पोषक तत्वों की कमी होती है। इसका उपयोग कृषि के लिए सीमित मात्रा में ही किया जाता है।

उपयुक्त फसलें: इस मिट्टी में सामान्यतः वृक्षारोपण और बागवानी फसलों, जैसे अनार, अमरूद, और खट्टे फलों की खेती की जाती है। इसके अलावा, पर्वतीय ढलानों पर वनस्पतियों का संरक्षण और मृदा संरक्षण तकनीकें अपनाई जाती हैं।

कृषि तकनीकें: इस मिट्टी में जल संरक्षण तकनीकें, जैसे कंटूर खेती और टेरेस फार्मिंग, का उपयोग किया जाता है। इन तकनीकों के माध्यम से मिट्टी के अपरदन को रोका जाता है और कृषि योग्य भूमि का विस्तार किया जाता है।

मृदा संरक्षण और कृषि प्रबंधन: राजस्थान की मृदा और कृषि प्रणाली को स्थिरता प्रदान करने के लिए विभिन्न मृदा संरक्षण तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित विधियाँ शामिल हैं!

- कृषि में फसल चक्र का उपयोग यह विधि मृदा के पोषक तत्वों को संतुलित करने और इसकी उर्वरता को बनाए रखने में सहायक होती है।
- जल प्रबंधन राजस्थान में जल की कमी को देखते हुए सूक्ष्म सिंचाई तकनीक, ड्रिप सिंचाई और वर्षा जल संचयन तकनीकों का उपयोग किया जाता है।
- जैविक खेती रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद का उपयोग मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखने और फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

९

PMKSY 2.0 के अंतर्गत सबवाटरशेड प्रबंधन के लिए भूमि संसाधन सूची (बिहार)

एस. के. रेजा, राजेश कुमार, मोहम्मद तारिक, आकृति भारद्वाज,
बेनुकंथा दास, मौली पाल एवं एफ. एच. रहमान
भा. कृ. अनु. प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र, कोलकाता

भूमि संसाधन सूची (**Land Resource Inventory-LRI**), एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो क्षेत्र स्तर पर मिट्टी, जल और संबंधित संसाधनों का विस्तृत विश्लेषण प्रदान करता है। इसका उद्देश्य मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों, पोषक तत्वों की स्थिति, फसलों के अनुकूलता, और मृदा एवं जल संरक्षण उपायों का निर्धारण करना है। LRI प्राकृतिक संसाधनों के कुशल प्रबंधन और भविष्य के भूमि उपयोग की योजना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेष रूप से स्थायी कृषि उत्पादन के लिए।

LRI निम्नलिखित दो प्रकार के डेटा प्रदान करता है:

1. भूमि संसाधनों की सूची (LRI): जिसमें चट्टान, मिट्टी, ढलान, अपरदन प्रकार और वनस्पति जैसे पाँच भौतिक कारकों की जानकारी दी जाती है।
2. भूमि उपयोग क्षमता वर्गीकरण (LUC): दीर्घकालिक कृषि उत्पादन के लिए भूमि की क्षमता का आकलन।

उच्च-रिज़ॉल्यूशन रिमोट सेंसिंग डेटा का उपयोग कर LRI मिट्टी और जल संरक्षण योजनाओं, फसल प्रबंधन, पोषक तत्व प्रबंधन और GIS-आधारित विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (DPR) के निर्माण में मदद करता है। इस डेटा-आधारित दृष्टिकोण से समय पर सही निर्णय लेने, परियोजनाओं के अद्यतन और निष्पक्ष योजना बनाने में सहायता मिलती है।

परियोजना के उद्देश्य :

1. वाटरशेड का भूमि उपयोग और भू-आकृति मानचित्रण: भौगोलिक तकनीकों का उपयोग करते हुए बड़े पैमाने पर क्षेत्रीय विश्लेषण।
2. मृदा और जल संसाधनों का वर्णन और मानचित्रण: सूक्ष्म-वाटरशेड स्तर पर।
3. फसल-भूमि अनुकूलता का मूल्यांकन: भूमि के गुणों के आधार पर फसलों की संभावनाओं का विश्लेषण।

बिहार में भूमि अपक्षय की स्थिति :

बिहार के लगभग 50% क्षेत्र में भूमि अवनति की समस्या है, विशेषकर कृषि-जलवायु क्षेत्र IIIB (सबसे शुष्क क्षेत्र) में। इस क्षेत्र में सीमित जल संसाधनों और वनक्षरण के कारण 33% भूमि प्रभावित है।

गया जिले का मोहरा वाटरशेड (WDC2.0/III/Gaya), 6,610 हेक्टेयर में फैला है (24°52′23″N से 24°57′28″N और 85°12′33″E से 85°20′37″E तक) यहाँ मुख्य रूप से 'कृषि' पर निर्भरता है, जिसमें 70.47% क्षेत्र कृषि योग्य भूमि है और केवल 4.50% भूमि वनस्पतियों से आच्छादित है।

वाटरशेड की भौगोलिक और मृदा संरचना :

KOMPSAT-3A सैटेलाइट डेटा के विश्लेषण और इलाके के नक्शे से प्राप्त मानचित्रण में 35 टेरेन मैपिंग यूनिट (TMUs) और 16 मृदा इकाइयाँ पाई गईं। क्षेत्र का 56.49% भाग बहुत ही हल्की ढलान वाला है, जिसमें 75.72% गहरी मिट्टी पाई जाती है, जबकि 3.96% क्षेत्र की ढलान अधिक होने के कारण वहाँ मिट्टी की गहराई कम है। हल्की ढलान वाले क्षेत्रों में हल्का अपरदन देखा गया है, जबकि तेज ढलानों पर गंभीर अपरदन की समस्या है। पेडिमेंट भू-आकृति 66.32% क्षेत्र पर फैली है और यहाँ मध्यम रूप से अच्छी जल निकासी पाई जाती है। जलोढ़ मैदान में अच्छी जल निकासी है, जबकि पहाड़ियों और फूटहिल्स में अत्यधिक जल निकासी देखी गई है।

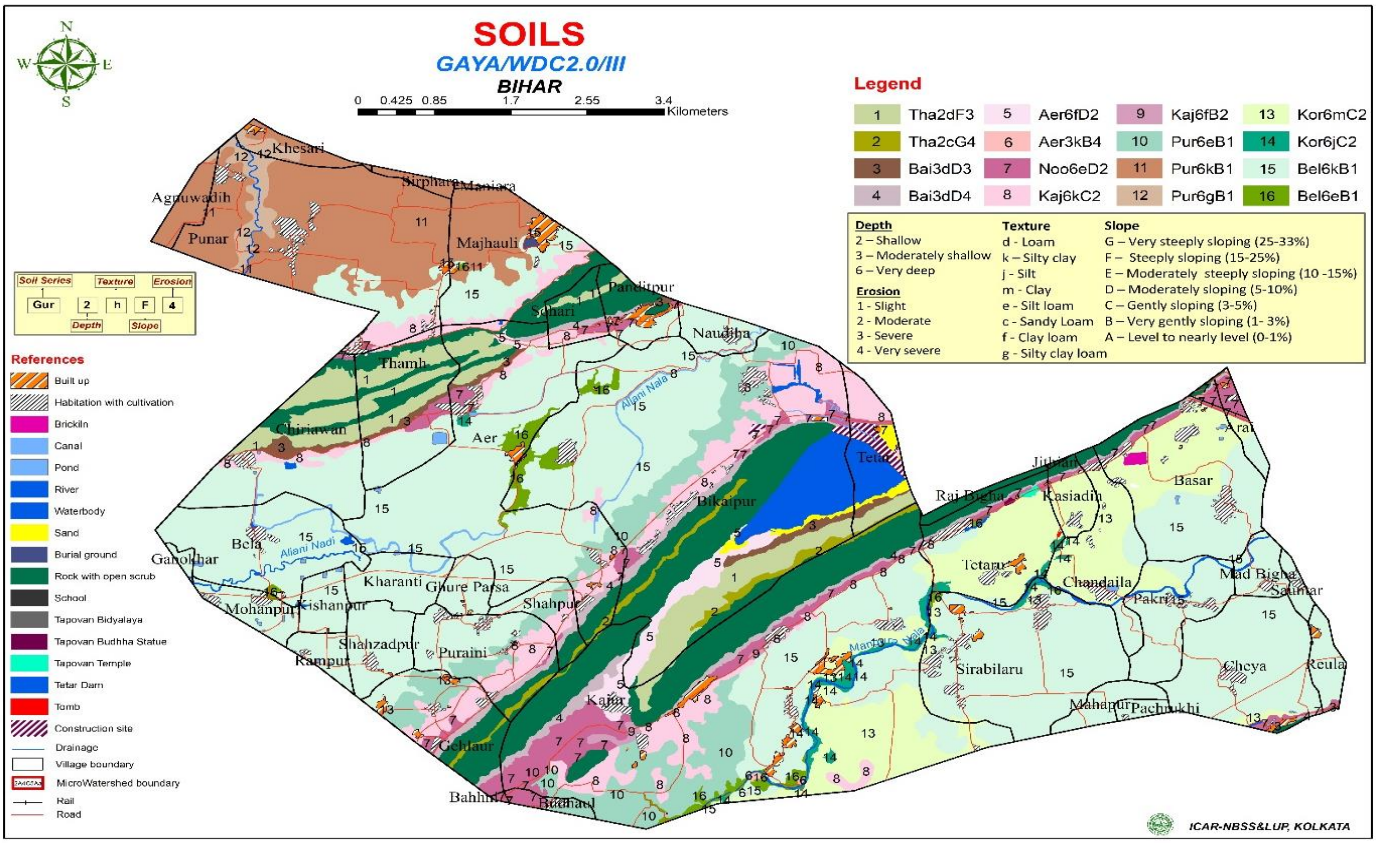

WDC2.0/III/गया का मृदा मानचित्र

मृदा बनावट और पोषक तत्व स्थिति:

मृदा की प्रमुख बनावट सिल्टी क्ले (55.96%) है, जबकि सिल्ट लोम (8.77%) और क्ले (8.55%) अन्य प्रमुख प्रकार हैं। अधिकांश मिट्टी क्षारीय है, जिसमें सतह और उपसतह दोनों पर जैविक कार्बन का स्तर कम है।

- नाइट्रोजन: अधिकांश क्षेत्रों में निम्न स्तर पर।
- फॉस्फोरस: सीमित उपलब्धता, मुख्य रूप से उच्च pH के कारण।
- पोटैशियम: कुछ क्षेत्रों में उच्च, अन्य में मध्यम या निम्न स्तर।
- सल्फर: उच्च अपक्षय वाले क्षेत्रों में कमी।
- जिंक और बोरॉन: विशेषकर पेडिमेंट और जलोढ़ क्षेत्रों में कमी पाई गई।

भूमि उपयोग क्षमता और कृषि संभावनाएँ:

56.67% क्षेत्र क्लास II के अंतर्गत आता है, जो कृषि के लिए सबसे उपयुक्त है। जबकि क्लास III, IV, VI, और VII भूमि पर ढलान, अपरदन और मृदा गुणवत्ता जैसी सीमाएँ हैं।

- स्थायी रूप से अनुपयुक्त क्षेत्र (N2): पहाड़ी और फूटहिल क्षेत्रों में सीमित गहराई और अपर्याप्त जल निकासी के कारण कृषि के लिए अनुपयुक्त।
- पेडिमेंट भूमि: फसल उत्पादन के लिए मध्यम रूप से उपयुक्त है लेकिन मृदा उर्वरता और भौतिक स्थितियों में सुधार की आवश्यकता है।

70% क्षेत्र में खरीफ और ग्रीष्मकालीन धान, गेहूँ, मक्का, तिल, मसूर, आलू, और सब्जियाँ उगाई जाती हैं। 77% कृषि भूमि पर मौसमी फसलें होती हैं। स्थायी फसलें अपनाने से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और मौसमी क्षरण को रोका जा सकता है।

जल प्रबंधन और वर्षा विश्लेषण:

2012-2022 के बीच वर्षा में भारी उतार-चढ़ाव देखा गया, जिसमें 617 मिमी से 1510.1 मिमी तक वर्षा दर्ज की गई। वर्षा की असमानता के कारण सूखे की स्थिति से निपटने के लिए सिंचाई प्रबंधन आवश्यक है।

- जल संरक्षण उपाय: तालाबों का निर्माण और पुनर्भरण, कुओं की सफाई, और पर्कोलेशन टैंक का उपयोग भूजल स्तर सुधारने में सहायक होगा।
- अफॉरेस्टेशन और बंडिंग से मृदा अपरदन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- अहर-पाइन प्रणाली से मानसून के दौरान वर्षा जल का संग्रह और रबी सिंचाई में सुधार किया जा सकता है।

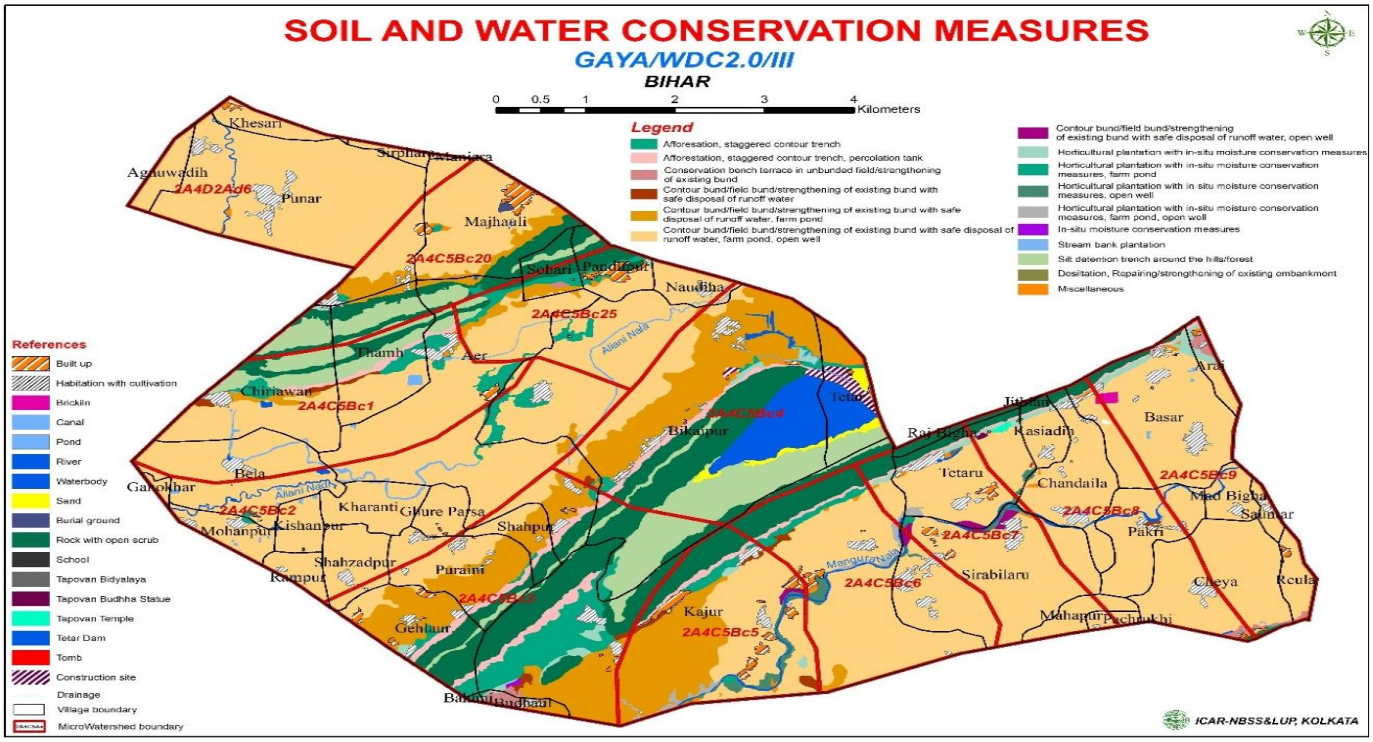

मृदा एवं जल संरक्षण उपाय मानचित्र

जल गुणवत्ता:

जल गुणवत्ता विश्लेषण से पता चलता है कि 77.19% क्षेत्र का पानी सिंचाई और पीने के लिए उपयुक्त है। हालांकि, 53.73% क्षेत्र में अत्यधिक कठोर जल (very hard water) पाया गया, जो सिंचाई के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है। मैग्नीशियम और कैल्शियम की उच्च सांद्रता वाले क्षेत्रों में सिंचाई पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

- 21.29% क्षेत्र सिंचाई के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।
- 55.54% क्षेत्र मध्यम रूप से उपयुक्त है।
- 6.18% क्षेत्र जल गुणवत्ता समस्याओं के कारण अनुपयुक्त है।

निष्कर्ष और सिफारिशें :

मोहरा वाटरशेड की LRI से प्राप्त जानकारी से मृदा और जल संसाधन प्रबंधन, पोषक तत्व स्थिति सुधार, और जल गुणवत्ता प्रबंधन के लिए योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। संरक्षण कृषि अपनाने से मिट्टी की नमी संरक्षित रहेगी और उत्पादन में वृद्धि होगी।

कृषि और जल प्रबंधन में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए गए हैं:

1. जल संग्रहण: खेत तालाबों, कुओं, और पर्कोलेशन टैंकों का निर्माण।
2. मृदा संरक्षण: साइल डिटेंशन ट्रेंच और मजबूत बंडिंग।
3. फसल विविधीकरण: वार्षिक और बहुवर्षीय फसलों का मिश्रण अपनाना।
4. जल गुणवत्ता निगरानी: कठोर पानी वाले क्षेत्रों के लिए विशेष उपाय।

यह अध्ययन जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ाने और स्थायी विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

१०

मृदा की उर्वरा शक्ति एवं गन्ने में शर्करा वृद्धि करने हेतु गन्ना फसल अवशेषों की अहम भूमिका

ब्रह्म प्रकाश, ओम प्रकाश एवं आनंद प्रकाश नागर
भा.कृ.अनु.प.,भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो नागपुर 440033

किसी भी फसल की कटाई के पश्चात बचे हुये डंठल हरी एवं सूखी पत्तियाँ तथा फसल के अन्य भाग जो खेत में कटाई के बाद पड़े रह जाते हैंको फसल अवशेष की संज्ञा दी जाती है।

गन्ने की पत्तियाँ में पाए जाने वाले पोषक तत्व:

गन्ने की हरी सूखी पत्तियाँ व अन्य पादप अवशेषों में नाइट्रोजन 0.40 प्रतिशत, फास्फोरस 0.14 प्रतिशत एवं पोटाश 0.50 प्रतिशत, 2045पीपीएम लौह तत्व, 236.4 पीपीएम जस्ता तथा 16.8 पीपीएम ताँबा की मात्रा पायी जाती है।

गन्ने की पत्तियाँ से पोषक तत्वों की आपूर्ति:

गन्ने की पत्ती पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए एक महत्वपूर्ण फसल द्वारा उत्पादित जैविक उत्पाद है। खेतों में गन्ने की सूखी पत्तियों के प्रयोग करने पर 2.1 लाख टन नाइट्रोजन, 0.75 लाख टन फास्फोरस तथा 3.0 लाख टन पोटेशियम की आपूर्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, 117.4 हजार टन लौह तत्व, 12.5 हजार टन मैंगनीज, 1.35 हजार टन जस्ता तथा 0.90 हजार टन मैंगनीज, 1.35हजार टन जस्ता तथा तथा 0.90 हजार टन ताँबा की आपूर्ति करने की गन्ने की पत्तियों में क्षमता पायी जाती है।

गन्ने के फसल अवशेष:

गन्ने के फसल अवशेषो में मुख्यत :गन्ने की पत्तियाँ) हरी व सूखी(, फसल के ठूँठ, जड़ें व फसल के अन्य भाग जो फसल की कटाई के बाद खेत में अवशेष के रूप में प्राप्त होते हैं।

गन्ने की शुष्क पत्तियाँ:

यह मृदा में नमी संरक्षण तथा खरपतवार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शुष्क पत्तियों का वर्मीकंम्पोस्ट बनाकर उपयोग करने से पोषक तत्वों की वृद्धि की जा सकती है।

गन्ना फसल के ठूँठ व जड़ें :

पेड़ी गन्ने में बावक फसल द्वारा गन्ने के कुल उत्पादन का लगभग 4.5 प्रतिशत जड़ें तथा 12.7 प्रतिशत ठूंठ होता है। दोनों मात्राओं को साथ में मिलकर कुल योग 17.2 प्रतिशत तक हो जाता है। इन ठूंठों को सड़ाकर मृदा की उर्वरा शक्ति को दीर्घ काल तक टिकाऊ रखा जा सकता है।

खेत में गन्ने की पत्तियाँ को बिछाने का तरीका एवं उपयुक्त समय :

फसल अवशेष को विभिन्न दर से तथा अलग अलग तरीके से मृदा में प्रयोग किया जाता है। खेत में उपयोग में लाने हेतु गन्ने की सूखी पत्तियों को निम्नलिखित प्रकार से बिछाया जाता है-

- बावक गन्ने की कटाई के बाद सूखी पत्तियों की पेड़ी लेने वाले खेत की पंक्तियों के मध्य में 08-10 सेंटीमीटर मोटी पर्त बिछा देते हैं।
- गन्ने की कटाई के बाद सूखी पत्तियों को खेत में एक समान रूप में बिछा देते हैं।
- गन्ने की कटाई के बाद सूखी पत्तियों को खेत के किनारे एकत्रित करके खाली में खेत में भी बिछा देते हैं।

गन्ना फसल अवशेषों के मृदा में उपयोग से लाभ:

फसल अवशेषों का पुनः चक्रीयकरण करने से मृदा की उर्वरा शक्ति एवं गन्ने की मिठास को वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें से प्रमुख लाभों का वर्णन निम्नलिखित है:

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार:

गन्ने की फसल के विभिन्न फसल अवशेषों को मृदा में पुन :मिलाने से मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार होता है तथा गन्ने की उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। जिससे गन्ने की खेती से अधिक मौद्रिक लाभ कमाया जा सकता है। गन्ने की सूखी पत्तियाँ को पेड़ी गन्ना में बिछाने से मृदा के भौतिक गुणों में जो सुधार पाये गए, इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नवत है :

- मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- मृदा घनत्व में कमी आती है
- अधिक समय तक नमी संचित रहने की वजह से पौधों की जड़ें अधिक गहराई से नमी का शोषण कर लेती है।
- मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाने के कारण मृदा की सतह की कठोरता कम हो जाती है।
- मृदा क्षरण में कमी आती है।
- मृदा वायु संचार में वृद्धि होती है।
- मृदा नमी संरक्षण में वृद्धि होती है।

पादप पोषक तत्वों में वृद्धि:

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में फसल अवशेषों का उपयोग अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है जिसके परिणामस्वरूप मृदा के कार्बनिक पदार्थ की बढ़ोत्तरी से जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है जिससे फसल के उत्पादन एवं मृदा के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। सूखी पत्तियों के सड़ने के लगभग 6 महीनों में आवश्यक पोषक तत्वों की 20 प्रतिशत मात्रा गन्ने की फसल को प्राप्त हो जाती है। यह सिद्ध हो चुका है कि गन्ने की शुष्क पत्तियों द्वारा बनी कम्पोस्ट से अधिक पोषक तत्वों की आपूर्ति करती है। इसमें विभिन्न पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा होती है। गन्ने की सूखी पत्तियों को खेत में सड़ाने से मृदा कार्बन तथा नाइट्रोजन के स्तर में वृद्धि होती है।

मृदा की उपजाऊ शक्ति में टिकाऊपन:

मृदा की उपजाऊ शक्ति में टिकाऊपन आता है जिससे खेती को लाभदायक बनाया जा सकता है। गन्ने के साथ दहलनी फसलों के फसल अवशेष का मृदा में मिलाने पर मृदा की उपजाऊ शक्ति एवं पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाने में सहायक होती है। जिससे मृदा स्वास्थ्य के टिकाऊपन में बढ़ोत्तरी होती है) तालिका (1)।

तालिका .1 गन्ना के साथ विभिन्न दलहनी फसलों की खेती के अंतर्गत गन्ना के फसल अवशेष के मृदा में मिलाने से पूर्व एवं पश्चात मृदा सूक्ष्मजीवी कार्बन नाइट्रोजन

उपचार	**मृदा सूक्ष्मजीवी कार्बन नाइट्रोजन) मि.ग्रा/.कि.ग्रा 10/.दिवस**	
	फसल अवशेष के मृदा में मिलाने के पूर्व	**फसल अवशेष के मृदा में मिलाने के पश्चात**
गन्ना + लोबिया	78.80	97.93
गन्ना + मूंग	78.06	97.83
गन्ना + उर्द	74.06	79.83
गन्ना + ढेंचा	87.56	79.09

सिंचाई जल की बचत:

फसल अवशेषों को मृदा में उपयोग करने से मृदा की ऊपरी सतह में पर्याप्त नमी संरक्षित रहती रहती है जिससे गन्ना पेड़ी फसल हेतु सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है जिससे सिंचाई जल की मात्रा की बचत होती है। गन्ने की सूखी पत्तियाँ जिस खेत में बिछाई गयी हैं उस जगह से जल का वाष्पीकरण कम होता है जिससे 40-35 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है।

उत्पादकता में वृद्धि:

फसल अवशेष को विभिन्न दरों से अलग-अलग तरीके से मृदा में मिलाने पर गन्ने की फसल की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ शर्करा) प्रतिशत (में भी सार्थक वृद्धि होती पायी गई है। गन्ने की शुष्क पत्तियों को काटकर खेत में सीधे मिला देने से मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ने के साथ गन्ने की उत्पादकता तथा शर्करा में भी वृद्धि हुई। उत्तर-दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में किए गए प्रक्षेत्र परीक्षणों में यह पाया गया कि 5 टन गन्ना अवशेष प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन के साथ मिलाकर उपयोग करने से गन्ने की उपज में वृद्धि हुई और 75 किग्रा प्रति हेक्टेयर तक नाइट्रोजन उर्वरक की बचत हुई। गन्ने के अवशेषों से मृदा की नाइट्रोजन की हानि में कमी आई और मृदा के कार्बनिक पदार्थ के स्तर में वृद्धि हुई) तालिका(2 ।

तालिका .2 गन्ने के अवशेषों के विभिन्न तरीकों तथा विभिन्न मात्रा के प्रयोग से गन्ने की उत्पादकता एवं शर्करा प्रतिशत पर प्रभाव:

फसल अवशेष के उपयोग का तरीका	फसल अवशेष के उपयोग की मात्रा) टन/हे.	गन्ना की प्राप्त उपज) टन/हे.	शर्करा प्रतिशत
कटी हुई पताई	2.5	145.5	15.28
कटी हुई पताई	5.0	150.1	17.36
कटी हुई पताई	7.5	153.5	18.54
बिना कटी हुई पताई	2.5	144.0	15.34
बिना कटी हुई पताई	5.0	148.5	16.41
बिना कटी हुई पताई	7.5	152.0	17.38
पताई रहित	-	140.7	15.17

मृदा के कार्बन पदार्थ में वृद्धि:

फसल अवशेष के प्रयोग से मृदा में जीवांश पदार्थ की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। गन्ने की पतियों को अलग अलग रूपों में तथा गन्ने की सूखी पतियों को अलग अलग अंतराल में पेड़ी गन्ना की फसल में उपयोग करने पर मृदा के कार्बन पदार्थ में वृद्धि आँकी गई है) तालिका(3 ।

तालिका .3 गन्ने की सूखी पतियों को अलग अलग रूपों में तथा अलग अलग अंतराल में पेड़ी गन्ना की फसल में उपयोग करने पर मृदा के कार्बन पदार्थ में वृद्धि

उपचार	परीक्षण का महीना								
	अप्रैल			अगस्त			दिसंबर		
	ट्राइ-कोडर्मा सहित	ट्राइ-कोडर्मा रहित	औसत) ट्राइ-कोडर्मा सहित एवं रहित	ट्राइ-कोडर्मा सहित	ट्राइ-कोडर्मा रहित	औसत ट्राइ-कोडर्मा सहित एवं रहित	ट्राइ-कोडर्मा सहित	ट्राइ-कोडर्मा रहित	औसत) ट्राइ-कोडर्मा सहित एवं रहित
सूखी पत्ती बिछाकर	0.73	0.63	0.68	0.86	0.74	0.80	0.64	0.58	0.61
सूखी पत्ती जलाकर	0.64	0.54	0.59	0.63	0.69	0.60	0.60	0.54	0.57
पत्ती निकालकर	0.60	0.50	0.55	0.49	0.55	0.57	0.57	0.51	0.54
एकांतर विधि से पत्ती बिछाकर	0.70	0.60	0.65	0.62	0.68	0.62	0.2	0.56	0.59
औसत	0.67	0.57	-	0.61	0.55	-	0.61	0.55	-

मृदा के लाभदायक सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता में वृद्धि:
ग्रीष्मकाल में मृदा की ऊपरी सतह के तापमान में कमी तथा शीतकाल में मृदा के तापमान में वृद्धि होने के कारण मृदा में पाये जाने वाले असंख्य लाभदायक सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता से पौधों को नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की पौधों की उपलब्धता बढ़ जाती है। मृदा में जीवाणुओं के श्वसन स्तर में सुधार होता है। इससे मूल परिवेश में मृदा-जल-मूल का सामंजस्य सही बना रहता है।

गन्ना फसल अवशेष को खेत में मिलाने के अन्य लाभ:

- हानिकारक कीटों की रोकथाम
- फसल सुरक्षा
- खर-पतवारों पर नियंत्रण एवं उनकी रोकथाम
- मृदा उर्वरता में वृद्धि
- सिंचाई जल के वाष्पीकरण की रोकथाम
- गन्ना पेड़ी में किल्ले फूटने की संख्या में बढ़ोत्तरी
- मृदा ह्रास की रोकथाम
- सिंचाई जल की ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि
- मृदा गुणों में सुधार

- वातावरण के प्रदूषण से बचाने में सहायक
- फसल अवशेष से बनी कम्पोस्ट खाद मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं के बढ़ाने में सहायक
- फसल अवशेष से बनी बिजली, बायो गैस तथा जैविक खाद से अतिरिक्त आय।

गन्ना फसल अवशेष के अन्य उपयोग:

गन्ना फसल अवशेष को खेत में मिलाने के अलावा हरी पत्तियाँ) अगोला (को पशुओं के चारा के लिए उपयोग में लाया जाता है। गन्ने की सूखी पत्तियों को घरेलू ईंधन के रूप में जलाने हेतु उपयोग में लाया जाता है। कुछ भाग कागज उद्योग में भी उपयोग किया जाता है। सूखी पत्तियों को छप्पर बनाने में भी उपयोग करते है।

अधिकतर किसान फसल अवशेषो को जला देते हैं क्योंकि अन्य फसल अवशेषों की तुलना में गन्ना फसल सड़ने में थोडा समय अधिक लगता है। जवकि वातावरण संरक्षण और मृदा की उत्पादकता को सतत रूप से बनाए रखने के लिए फसल अवशेष सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। फसल अवशेषों और प्रक्षेत्र/ औद्योगिक अवशिष्टों जैसे धान अथवा गेहूं का भूसा, धान का छिलका, गन्ने के अवशेष,+aaZz आलू के डंठल, कपास अवशिष्ट प्रेसमड वन का कूड़ा-कचरा, जल-कुम्भी आदि के उपयोग की काफी संभावनाएं हैं। अतः गन्ना फसल अवशेष कृषि में समुचित एवं वैज्ञानिक विधि से प्रयोग करके टिकाऊ खेती में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

११

मृदा शक्ति, कृषि उत्पादन एवं पर्यावरण के संतुलन में पंचतत्वों का महत्व

एम्. एस. रघुवंशी, रितिक बिस्वास, आर. के. नैताम, अभय शिराले, पी.सी. मोहाराना,
एच.एल. खरबीकर, राहुल कोल्हे एवं नितिन जी. पाटिल
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो नागपुर 440033

भारतीय संस्कृति में, पंचतत्व पांच महान तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है जिससे जीवन उत्पन्न होता है। यह माना जाता है कि यह सभी सार्वभौमिक पदार्थ अनिवार्य रूप से इन पंचतत्व या पांच मूल तत्वों से बने हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, प्रकाश, वायु (पवन) और आकाश । ऋगवेद, मनु स्मृति, यागवलक्य स्मृति, आदि में पांच तत्वों अर्थात पृथ्वी, वायु, जल, सौर उर्जा और आकाष का सुपूर्ण जीवनचर्या तथा इन प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोगो के महत्व पर दिया गया है। प्राचीन युग से ही सृष्टि में चाहे जीवित या निर्जीव सब कुछ पांच मूल तत्वों से बना हुआ है। पृथ्वि पंच-मूल तत्व मिटटी के रुप में विघमान है। इस मिटटी पर सभी प्रकार के जीवन एवं निर्जीव वस्तुयें निहित है एवं इस तत्व पर ही सब पोषण प्राप्त करते है। इसलिये धरती को भारतीय ग्रंथो में धरती मां कहा गया है।

उन्ही में से एक तत्व- पृथ्वि के रुप में मिटटी भी कई प्रकारों की होती है एवं विभिन्न परतों की बनी होती है। जिसमें उपर की मिटटी, उप-मृदा एवं मूल सामग्री की बनी होती है जो कि मिटटी का मूल आधार माना जाता है। उसमें जीवित जीवों, खनिजों एवं चटटानों एवं अन्य कई पदार्थो से निहित होती है जिसे विज्ञान की भाषा में हयूमस कहा जाता है। इस ही मिटटी में विभ्भिन्न जीवन रुप प्रकट होते है। मृदा की खुली हई परत उपरी सतह कहलाती है जो कि सामान्यतः 13.25 सेमी की होती है, जिसकी एक मुठठी में लगभग आबादी से अधिक जिवाणु होते हैं ये अरबों जिवाणु, कीड़े और अन्य जीव बिना किसी ध्यान के धरती मां को जीवन शक्ति देने के लिए काम करते हैं। इन पंच महाभूत तत्वों से आनुपातिक रूप से ऊर्जा और जीवन को बनाए रखने में और धरती मां की रक्षा करने सक्षम होते है । यदि इन ऊर्जाओं का अनुपातहीन शोषण प्रदूषण का कारण बनता है एवं विकास के लिए प्रतिकूल साबित होता है। ठीक इसी तरह पिछलले सौ वर्षों के दौरान हुआ है और इसने प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया है तथा आज के परिदृश्य में इन सभी तत्वों, मानव ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से नष्ट करना शुरू कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न एवं गंभीर बीमारियां हो रही हैं।

वृक्षायुर्वेद- पौधों पर प्राचीन भारतीय ग्रंथ के अनुसार, मिट्टी एक जीवित और एक सूक्ष्म ब्रह्मांड है जिसमें पौधो के स्वास्थ्य, मिट्टी की उर्वरता, उत्पादकता और ताकत पर निर्भर करती है। मिट्टी पौधों, घासों और पेड़ों के लिए पोषक तत्वों की आपूर्ति करती है। इसकी मृदा नमी तथा अरबों सूक्ष्म जीवों के लिए आवास प्रदान करता है, जैव विविधता में योगदान देता है और बीमारियों से लड़ने के लिए उपयोग की जाने वाली अधिकांश एंटीबायोटिक दवाओं की आपूर्ति करता है।

धरती की उपरी सतह कार्बनिक पदार्थो एवं सूक्ष्मजीवों से बना होता है जिसमें रोगाणु, कीडें एवं अन्य जीव धरती मां को शक्ति प्रदान करते है। वहीं मृदा सूक्ष्मजीव कई महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं करते हैं और मिट्टी के स्वास्थ्य और गुणवत्ता के रखरखाव के काम आते है। वे मिटटी में कार्बनिक पदार्थों के कार्यकलापी में, पोषक तत्वों की रिहाई में तथा पोधौ तक पहुचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, और मिट्टी की संरचना का स्थिरीकरण और मिट्टी की उर्वरता सुनिश्चित करने में काम आते है। मिटटी पौधो, एवं पेंडो के लिये इसमें में उपस्थित महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की आपूती करती है, सूक्ष्म जीवों के लिए आवास प्रदान करती है, जैव विविधता में योगदान देती है और बीमारियों से लड़ने के लिए शक्ति प्रदान करती है।

एंटीबायोटिक्स मनुष्यों, जानवरों में संक्रामक रोगों के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज के परिवेष में दुनिया भर में एंटीबायोटिक्स के बढ़ते स्तर से पानी और मिट्टी में एंटीबायोटिक्स से सभी सूक्ष्मजीवों के लिए संभावित खतरा पैदा हुआ हैं। मिट्टी में एंटीबायोटिक्स और संरचनात्मक, आनुवंशिक और कार्यात्मक पर एंटीबायोटिक दवाओं का प्रभाव से माइक्रोबियल समुदायों की विविधता पर प्रतिकूल असर पडा है। मिट्टी में एंटीबायोटिक अवशेषों के मूल्यों से पता चलता है कि दृढ़ता को नियंत्रित करने वाली प्रक्रियाएं कई अलग-अलग कारकों पर निर्भर करती है जैसे अवशेषों के भौतिक रासायनिक गुण, मिट्टी की विशेषताएं, और जलवायु कारक, तापमान, वर्षा और आर्द्रता, आदि। इस समीक्षा में प्रस्तुत परिणाम बताते हैं कि एंटीबायोटिक्स मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को प्रभावित करते हैं। उनकी एंजाइम गतिविधि और विभिन्न कार्बन स्रोतों को चयापचय करने की क्षमता को बदलना, आदि। एंटीबायोटिक्स माइक्रोबियल समुदायों की जैव विविधता की रक्षा करते है।

भारत में कृषि भुमि का वर्तमान परिदृष्य:

भारतीय कृषि विज्ञान अकादमी के अध्ययन के अनुसार भारत में सालाना लगभग 15.35 टन प्रति हेक्टेयर मृदा का हास हो रहा है। जिसके परिणमस्वरुप 5.37 से 8.4 मिलियन टन पोषक तत्वों की हानि हो रही है और इसका सीधा प्रतिकूल प्रभाव कृषि उत्पादन पर हो रहा है। सन् 2016 में इसरो व्दारा भूमि क्षरण पर तैयार किये गये डाटाबेस के अन्रसार लगभग 120.7 मिलियन हेक्टेयर या कुल कृषि योग्य भूमि का लगभग 36.7 प्रतिषत जल क्षरण के साथ विभिन्न प्रकार के क्षरण से ग्रस्त है।

पंचतत्व, जलवायु में बदलाव एवं संतुलन:

पंचतत्व के संतुलन में थोडा विचरण भी जीवन के बेहतर अस्तित्व पर आपदाएं ला सकता है। सभी प्राकृतिक आपदाएं पंचतत्व में कुछ भिन्नताओं के कारण हो रही हैं। पिछले डेढ़ दशकों में जल, मौसम विज्ञान और संबंधित आपदाओं जैसे चक्रवात, बाढ़, सूखा, हिमस्खलन, गर्मी की लहरों और शीत लहरों की आवृत्ति और तीव्रता में तेजी से वृद्धि हुई है। यह न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में है और चिंता का एक बड़ा कारण है।

दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन हो रहा है जिसके असर बहुस्तरीय होते हैं, ऐसा मानते हैं कि जलवायु परिवर्तन से मौसमी घटनाओं में अचानक और अत्यधिक रूप से आई बढ़ोतरी देखने में आई है जो कई संक्रामक बीमारियों के फैलने में सहायक होती है। पर्यावरण के मुद्दे पर प्रोफेसर सुचित्रा सेन ने कहा, जलवायु परिवर्तन पर असर डालने वाले कारकों में उन्हीं बीमारियों जैसी समानता है जो महामारी में तब्दील हो जाती है। वैसे जलवायु परिवर्तन का असर हर तबके पर होता है और आने वाली पीढ़ियों में यह और उग्र हो सकता है। मानवजनित जलवायु परिवर्तन को स्पष्ट रूप से बढ़ते तापमान, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि, ग्लेशियरों के पिघलने, बाढ़, सूखे, बढते चक्रवात के रुप में देखा जा सकता है।

उत्तरी भारत में सिंधु-गंगा का का मैदान बेहद उपजाऊ है. इस इलाके में खेती में पुरुषों का वर्चस्व है। ब्रह्मपुत्र बेसिन के ऊपरी इलाकों में स्त्रियों की दशा के अलग आयाम हैं, पूर्वोत्तर के पहाड़ी इलाकों में कामकाज में महिलाओं की अधिक हिस्सेदारी है और मैदानी भारत की तुलना में पूर्वोत्तर के पहाड़ी इलाकों में महिला साक्षरता की दर भी अलग है। प्रो. सेन ने अपने अध्ययन में बताया है कि ब्रह्मपुत्र नदी के नजदीक रहने वालों में गरीबी अधिक है और वे अधिक बाढ़, अपरदन और नदी की धारा बदलने का सामना करते हैं। उनका संपत्ति (भूमि) पर अधिकार भी पारिभाषित नहीं है। ऐसा इसलिए क्योंकि कटाव का असर उधर अधिक होता है। दूसरी तरफ नदी से दूर बसे इलाकों में जमीन की मिल्कियत स्पष्ट रूप से चिह्नित होती है। साथ ही इसके सीधे लक्षणों में अमूमन तापमान और बारिश में बढ़ोतरी को ही शामिल किया जाता है, लेकिन नदी के बढ़ते जलस्तर, जब तब होने वाली बारिश और भूमि की उर्वरा शक्ति घटना फसलों पर प्रतिकूल असर दिखाता है। (ठाकुर, 2021)। पर्यावरण और विकास के लिए पंचतत्व संतुलन को समझने की जरूरत है। प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दों में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदा, ग्लोबल वार्मिंग मिट्टी और भूमि क्षरण, जैव विविधता की हानि, वायु और जल प्रदूषण शामिल हैं। ये सभी बड़े पैमाने पर रहने और स्वस्थ पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ते हैं जिससे षांतिपूर्ण मानव अस्तित्व धीरे धीरे सपना बनता जा रहा है।

रसायनिक उर्वरकों का उपयोग एवं फसल उपज:

कृषि में रसायनिक उर्वरकों का उपयोग फसल उत्पादन बढानें में जितना सहायक सिध्द हुआ है वहीं उनके अत्यधिक एवं असंतलित उपयोग के परिणामस्वरुप मृदा के स्वास्थ्य एवं पर्यावरण प्रदुषण ज्यादा देखा जा रहा है। भारत में उर्वरकों की खपत में प्रतिवर्ष 5.96 प्रतिषत की औसत वृध्दि हो रही है। वर्तमान में एनःपीःके उर्वरकों का उपयोग अनुपात 7:2.7:4 है जो कि आदर्ष्रुप में यह 4:2:1 होना चाहिये जिससे मृदा क्षरण न हो और मृदा की षक्ति बनी रहे। उर्वरकों के दीर्धकालिक उपयोगो पर अखिल भरतीय समन्वित षोध परियोजना के अंतर्गत किये गयेषोध के तहत पता चला कि समन्वित पोषक तत्वों प्रबंधन व्दारा न सिर्फ उच्च उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है बल्कि मृदा उर्वरता एवं उपलब्धता सुनिष्चितकी जा सकती है। भरत की मृदाओं में नत्रजन की कमी एवं फासफोरस व पाटेषियम क्रमषः 80 एवं 50 प्रतिषत जो कि कम से मध्यम श्रेणी है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि समन्वित एवं एकीकृत पोषक प्रबंधन बहुत ही कारगर होगा।

मृदा क्षरण एवं संरक्षण के लिये इसका पालन-पोषण:

जलवायु परिवर्तन के चलते एवं धरती के महत्वपूर्ण संसाधनों का अंधाधुंध दोहन मृदा के क्षरण कारण बनता है। जिससे मृदा की भौतिक, जैविक और रासायनिक प्रक्रियायें गंभीर रुप से प्रभावित होती है तथा वहीं मिट्टी की मात्रा और गुणवत्ता में गिरावट आती है। मिट्टी के भौतिक क्षरण का मतलब मिट्टी के कटाव से ह जैसे बाढ़ या तेज हवाओं से मिट्टी का क्षरण होता है। मिट्टी के रासायनिक क्षरण का अर्थ है लवणता, संरचना में क्षारीय से अम्लीय में परिवर्तन या मिट्टी का मरुस्थलीकरण। मिट्टी के जैविक क्षरण का मतलब है कि मिट्टी में जैविक सामग्री की कमी है। यह ग्रह की उर्वरता और उत्पादकता के साथ-साथ सभी जीवन रूपों की भलाई पर गंभीर प्रभाव डालता है।

कैसे बचाएं :

वनीकरण: मिट्टी के संरक्षित रखने के लिये पेड़ व जंगल प्राकृतिक प्रयोगशालाओं के रूप में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा मिट्टी को स्वाभाविक रूप से ह्यूमस, जैविक सामग्री और अन्य पोषक तत्वों के साथ जोड़ा जाता है। क्योकि पेडो़ के पत्ते और अन्य वन अपशिष्ट सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटित हो जाते हैं और साथ ही मृदा का हिस्सा बनते हैं। पेड़ मिट्टी में नमी बनाए रखने में मदद करते हैं। साथ ही, पेड़ पानी के बहाव के दौरान मिट्टी के तत्वों को क्षरित न करते हुये एक साथ जोडे रखते हैं । यह ऊपरी मिट्टी में जैविक सामग्री को जोड़ता है (वासुदेव, 2022)। कृषि पद्धतियों में परिवर्तन से भी कृषि उत्पादन को बढाने में मदद मिलती है। इस हेतु सतत कृषि पद्धति आवश्यक है तथा कृषि-वानिकी की तरफ स्थानांतरित होने से मिट्टी की गुणवत्ता में बढोत्तरी देखी गई है। रासायनिक आधारित उर्वरकों और कीटनाशकों की अपेक्षा प्रकृति पर आधारित जैविक सामग्री से खेती अपनाना होगा और संरक्षण खेती/ शून्य बजट खेती की तरफ बढना होगा। वहीं प्राकृतिक और जैविक खेती जैसी कई पारंपरिक प्रथाएं मिट्टी की खोई हुई उर्वरता को वापस पाने में मदद कर सकती हैं। उदारहण के तौर पर बायोमास, चावल की भूसी, गेहूं की भूसी, मकई की भूसी या मूंगफली के छिलके जैसी छिद्रक सामग्री पौधों की जड़ों को तेजी से बढ़ने और मिट्टी की गुणवत्ता में जोड़ने की सहायक होती है । कोको-पीट या गन्ने के डंठल जैसे वाटर रिटेनर मिट्टी की प्राकृतिक जल धारण क्षमता की तुलना में मिट्टी को अधिक नमी और पानी बनाए रखने की अनुमति देते हैं। जैविक पोषक तत्व जैसे खाद या वर्मिन कम्पोस्ट मिट्टी को पोषण देते हैं। यदि मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी है, तो हम खाद, वृद्ध खाद, बायोमास, गन्ने का कचरा, सूखा-गोबर, प्राकृतिक जैव-एंजाइम जैसे पंच-गव्य आदि जोड़ सकते हैं। रसायनों का जोड़ कभी नहीं करना चाहिए (वासुदेव, 2022)।

निष्कर्ष:

यह तथ्य कि प्रकृति के पांच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि/ ऊर्जा, आकाश और वायु) जीवन के संरक्षण के लिए जिम्मेदार हैं, जैसा कि वेदों एवं पुराणों में बताया गया है कि अब आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों से साबित हो रहा है। उदाहरण के लिए, कृषि में किए गए अध्ययनों ने यह साबित कर दिया है कि पृथ्वी पौधों के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्वों और पानी की आपूर्ति करती है। इसी तरह, यह स्थापित किया गया है कि सौर ऊर्जा, हवा से कार्बन डाइआक्साइड (हवा), और मिट्टी से पानी पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक तीन बुनियादी तत्व हैं, जो पौधों के विकास के लिए जिम्मेदार हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्यों के लिए भोजन प्रदान करते हैं। और पृथ्वी पर जीवन। पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग इन पांच तत्वों का असंतुलन है। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वी ग्रह पर स्थायी जीवन के लिए प्रकृति के पंचतत्वों (पांच तत्वों), अर्थात् क्षिति (पृथ्वी), जल (जल), पावक (अग्नि/ ऊर्जा) गगन (आकाश), और समीरा (हवा) के कुशल उपयोग पर अधिक से अधिक निर्भरता हो सकती है।

१२

सरसों की श्री विधिः वैज्ञानिक खेती से तिलहन आत्मनिर्भरता की ओर

संदीप कुमार,संजय सिंह राठौड़, मोहम्मद हसनैन, उदय शंकर सैकिया,
कृष्ण कुमार मौर्य, अरिजीत बर्मन, रवि कुमार एव दिवाकर रॉय
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र, जोरहाट असम
भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

सार:
विश्वभर में वनस्पति तेल पोषण, ऊर्जा आपूर्ति और आर्थिक स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्तमान में वैश्विक वनस्पति तेल उत्पादन प्रति वर्ष लगभग 4.1% की दर से बढ़ रहा है। इसके बावजूद, तिलहन फसलों की खेती में मौजूद चुनौतियों और अनिश्चित लाभप्रदता के कारण मांग और आपूर्ति के बीच का अंतर लगातार बढ़ता जा रहा है। भारत में खाद्य तेल की घरेलू मांग की तुलना में लगभग 14.1 मिलियन टन की कमी बनी हुई है, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2021-22 में खाद्य तेल आयात पर व्यय बढ़कर 18.70 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया। बढ़ती जनसंख्या और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण खाद्य तेल की मांग भी लगातार बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए सघन सरसों प्रणाली (System of Mustard Intensification, SMI) जैसे नवीन और टिकाऊ समाधान की आवश्यकता है। सफल सघन धान उत्पादन प्रणाली (SRI) से प्रेरित होकर विकसित यह प्रणाली सरसों की खेती में संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने, उत्पादकता सुधारने और पर्यावरणीय प्रभाव को न्यूनतम करने पर केंद्रित है। सघन सरसों प्रणाली तिलहन उत्पादन को सशक्त बनाने, खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा आयात निर्भरता को घटाने की दिशा में एक प्रभावी और आशाजनक नवाचार के रूप में उभर रही है।

परिचय:
भारत में तिलहनी फसलें कृषि और पोषण दोनों दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये न केवल खाद्य तेल का प्रमुख स्रोत हैं बल्कि किसानों की आय बढ़ाने और देश की तिलहन आत्मनिर्भरता में भी अहम योगदान देती हैं। वर्तमान में भारत में तिलहनी फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन और औसत पैदावार क्रमशः 28.5 मिलियन हेक्टेयर, 41.9 मिलियन टन और 1.47 टन प्रति हेक्टेयर है। इनमें सरसों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनका क्षेत्रफल 9.21 मिलियन हेक्टेयर, उत्पादन 11.52 मिलियन टन, तथा औसत पैदावार 1.26 टन प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई है। भारत में वर्तमान खाद्य तेल का घरेलू उत्पादन 11.5 मिलियन टन है, जबकि वार्षिक खपत 25.6 मिलियन टन तक पहुँच चुकी है। इस प्रकार 14.1 मिलियन टन की भारी कमी बनी हुई है, जिसे पूरा करने के लिए देश को आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। खाद्य तेल आयात पर भारत का व्यय वर्ष 2020-21 में 10.92 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2021-22 में 18.70 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया है। यह परिदृश्य स्पष्ट करता है कि आने वाले समय में वनस्पति तेल देश की भोजन आपूर्ति, पोषण सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता में और भी निर्णायक भूमिका निभाएगा।
इस संदर्भ में, सघन सरसों प्रणाली (System of Mustard Intensification, SMI) एक अत्यंत आशाजनक कृषि नवाचार के रूप में उभर रही है। यह प्रणाली सरसों की खेती को अधिक वैज्ञानिक, संसाधन-दक्ष और पर्यावरण-संवेदी बनाने पर केंद्रित है। इसकी प्रेरणा सफल सघन धान प्रणाली (System of Rice Intensification, SRI) से ली गई है, और इसी के सिद्धांतों जैसे कि कम बीज दर, व्यापक पौधों की दूरी, समयबद्ध सिंचाई, संतुलित पोषण, और मिट्टी के स्वास्थ्य का संरक्षण का प्रयोग सरसों की खेती में किया जाता है। सघन सरसों प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करना है। यह प्रणाली न केवल जल, उर्वरक और श्रम के कुशल उपयोग को बढ़ावा देती है, बल्कि जलवायु सहनशीलता, मिट्टी की उर्वरता, और कीट एवं रोग प्रबंधन में भी सुधार लाती है। अनेक अनुसंधान अध्ययनों में पाया गया है कि SMI के अंतर्गत पौधों की बेहतर जड़ वृद्धि, उच्च प्रकाश संश्लेषण, अधिक शाखाओं और फलियों के कारण उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। देश के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में किए गए प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि SMI तकनीक अपनाने से सरसों की उपज में 15-25% तक वृद्धि, जल उपयोग दक्षता में सुधार और खेती की लागत में कमी संभव है। इसके साथ ही यह प्रणाली पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ है, क्योंकि यह रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग को कम करती है।
इस लेख के माध्यम से हमने सघन सरसों प्रणाली की वैज्ञानिक अवधारणा, व्यावहारिक लाभ, और अपनाने की रणनीतियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ताकि यह तकनीक किसानों, कृषि वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं तक पहुँच सके। हमारा उद्देश्य है कि देश में सरसों उत्पादन को सशक्त बनाकर तिलहन आत्मनिर्भरता, लाभदायक खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किया जा सके।

सघन सरसों प्रणाली के सिद्धांत सिद्धांत:

सघन सरसों प्रणाली टिकाऊ कृषि पद्धतियो पर जोर देती है। इस प्रणाली के मुख्य सिद्धांत के अंतर्गत उपयुक्त किस्म का चयन, सीड प्राईमिंग, बीज उपचार, नर्सरी की तैयारी, उचित समय एवं दूरी पर रोपाई करना, कुशल जल उपयोग, पोषक तत्व और खरपतवार प्रबंधन और एकीकृत कीट प्रबंधन आदि शामिल हैं। इस प्रणाली का लक्ष्य पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए सरसों के उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाना हैं।

बीज के किस्मों का चयन एवं बुआई:

किस्में- पूसा सरसों 28 (एन.पी.जे.-124), पूसा विजय (एन.पी.जे. 93), सी.एस. 52,

किस्म
सघन सरसों प्रणाली की सफलता उच्च गुणर्वत्ता वाली सरसों की बीज के चयनात्मक/प्रमाणणत चयन से होती है।

नर्सरी तैयारी
सघन सरसों प्रणाली के लिए नर्सरी क्षेत्र की ऊँचाई जमीन से 4-6 इंच और चौडाई 1 मीटर होनी चाहिए।

अंकुरित बीजों की बुवाई
अंकुरित बीजों को 1-1.5 सेमी की गहराई और 5×5 सेमी की दूरी पर बोया जाना चाहिए, इसके बाद कम्पोस्ट और धान की भूसी से हल्का ढक दिया जाता है।

बीज दर
किस्म के आकार के आधार पर 75-250 ग्राम / एकड़ ।

नर्सरी क्षेत्र
किस्म की आवश्यकता के आधार पर 30-50 वर्ग मीटर / एकड़।

सिंचाई
नर्सरी की बवाई के बाद सुबह और शाम के समय भिगोने या छिड़काव आवश्यक रूप से करना चाहिए।

बीज प्राइमिंग
बीजों को जमुन पानी, गोमूत्र, गुड़ और जैविकमल्चर में भिगोकर 6 घंटे तक ट्रीट करना चाहिए। पानी की मात्रा बीज की मात्रा से दुगनी होनी चाहिए, जबकि गोमूत्र और गुड़ का मिश्रण आधी मात्रा में होना चाहिए।

बीज उपचार
बीज प्राइमिंग के 6-8 घंटे के बाद, बीजों को ट्राइकोडर्मा के साथ 4 ग्राम /किलो बीज की दर से मिलाया जा सकता है।

पौध निकालना
पौधे बुवाई के 8-12 दिन बाद प्रत्यारोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

चित्र 1 नर्सरी की तैयारी

बीज प्राईमिंग, उपचार एवं नर्सरी तैयारी:

पौधों की रोपाई मृदा में सटीकता से उचित गहराई पर की जानी चाहिए। नर्सरी से पौधों को निकालते समय मिट्टी में अच्छी नमी होनी चाहिए जिससे पौधों को उखाड़ने में आसानी हो। पौधों की रोपाई बुवाई के 8-12 दिन बाद या 3-4 पत्ती अवस्था में अनुशंसित है।

चित्र 2 नर्सरी

मुख्य खेत के लिए कृषि संबंधी पद्धतियाँ:

पौध रोपाई के लिए दूरी-

रोपाई (45 सेमी x 45 सेमी) पौधों की रोपाई वर्गाकार आकार में भूमि की अंतिम तैयारी के दौरान बनाए गए प्रत्येक निशानों में उथली गहराई पर रोपाई किया जाना चाहिए।

जल प्रबंधन:

नर्सरी में बुवाई के उपरांत हर दिन सुबह और शाम को पानी का छिड़काव करना चाहिए. नर्सरी से पौधों को उखाड़ते समय जड़ो को क्षति से बचने के लिए पर्याप्त नमी होनी चाहिए। रोपाई से पूर्व आवश्यकता अनुसार खेत की तैयारी के लिए एक सिंचाई की जा सकती हैं। पहली सिंचाई एवं दूसरी सिंचाई क्रमश रोपाई के 14 एवं 30 दिनों के बाद अनुशंसित हैं। जरुरत के अनुसार तीसरी सिंचाई रोपाई के 35 दिनों के बाद कर सकते हैं। पौधों के स्वस्थ वृद्धि और विकास के लिए रोपाई के 60, 80 और 100 दिनों पर करनी चाहिए। पाला और माहू (एफिड) से बचाव के लिए नियमित रूप से देख रेख और सुरक्षा उपाय से बचा जा सकता हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन:

खेत की तैयारी के दौरान कम्पोस्ट 8 टन प्रति एकड़, ट्राइकोडर्मा 1.5 किग्रा प्रति एकड़, डी.ए.पी. 27 किग्रा प्रति एकड़ उर्वरक का प्रयोग फसलों के लिए लाभदायक होता हैं। रोपाई के 15 दिन बाद 27 किलो यूरिया प्रति एकड़ की दर से देना चाहिए। मौसम की स्थिति के आधार पर रोपाई के 35 दिन बाद 13.5 किलो यूरिया एकड़ की दर से देना चाहिए। रोपाई के 40 दिन बाद 13.5 किलो प्रति एकड़ की दर से पोटाश दिया जा सकता हैं।

खरपतवार प्रबंधन:

SMI में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है क्योंकि पौधों के बीच अधिक दूरी होने से प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार तेजी से विकसित होते हैं। निराई-गुड़ाई पहली बार बुवाई के 15-20 दिन बाद और दूसरी बार 30-35 दिन बाद करनी चाहिए। यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण के लिए कोनो वीडर या हैंड वीडर का प्रयोग प्रभावी रहता है। प्रत्येक गुड़ाई के बाद मिट्टी को हल्के से पलटना चाहिए ताकि वातन (Aeration) बढ़े और पौधों की जड़ें मजबूत हों। जैविक प्रणाली में मल्चिंग (भूसा या फसल अवशेष) का प्रयोग खरपतवार दबाने में सहायक होता है।

कीट और रोग प्रबंधन:

एकीकृत कीट प्रबंधन सघन सरसों प्रणाली का मुख्य पहलू हैं। किसानों को लाभकारी कीड़ों की पहचान के लिए शिक्षित करना चाहिए तथा लाभकारी कीड़ों को हानिकारक कीड़ों के रोकथाम के लिए प्रयोग करना चाहिए।

सरसों सघनीकरण प्रणाली से संबंधित सफलता की कहानियाँ:

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुसंधान फार्म पर किये प्रयोगे में पाया गया है की पारंपरिक तरीकों की तुलना में सरसों सघनीकरण प्रणाली सकारात्मक परिणाम देती हैं। सघन सरसों प्रणाली देश के विभन्न राज्यों में अच्छा प्रदर्शन की हैं। मध्य प्रदेश के उमरिया जिले में 10000 किसानों ने इस उन्नतशील प्रणाली से सरसों की खेती की और 4 से 5.7 टन प्रति हेक्टेयर के बीच सरसों का उत्पादन हुआ। सघन सरसों प्रणाली की सफलता मध्य प्रदेश तक ही सीमित नहीं हैं, बिहार, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के किसानों ने भी इसको अपना कर अधिक पैदावार को दर्ज किया हैं।

चित्र 3 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में सघन सरसों प्रणाली का प्रयोग

चुनौतियाँ:

सघन सरसों प्रणाली (SMI) में पानी, पोषक तत्व और पौध रोपाई की दूरी के लिए अनुकूल सिफारिशें आवश्यक हैं। इस प्रणाली में नर्सरी तैयार कर पौधों का प्रत्यारोपण किया जाता है, जो श्रम-गहन और समय-संवेदनशील प्रक्रिया है। पारंपरिक खेती की तुलना में इसमें अधिक मजदूर और समय की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से निराई-गुड़ाई और सिंचाई के दौरान। सिंचाई की सटीकता अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिक या कम पानी देने से पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। किसानों में SMI तकनीक के प्रति सीमित जानकारी और प्रशिक्षण की कमी इसकी व्यापक स्वीकृति में बाधक है। कोनो वीडर जैसे यांत्रिक उपकरणों की सीमित उपलब्धता, गुणवत्ता वाले बीज और जैविक इनपुट की आवश्यकता भी चुनौती बनी हुई है। साथ ही, नई तकनीक अपनाने में प्रारंभिक निवेश, अनिश्चित परिणाम और प्रचार-प्रसार की कमी के कारण किसान इसके प्रति हिचकिचाहट दिखाते हैं। इसलिए, इस प्रणाली के सफल प्रसार के लिए प्रशिक्षण, संसाधन उपलब्धता और जागरुकता पर विशेष ध्यान आवश्यक है।

सारांश:

खाद्य तेल आयात पर भारत की निर्भरता को कम करने के लिए सघन सरसों प्रणाली महत्वपूर्ण है, जो 2021-22 में खर्च किए गए 18.7 बिलियन डॉलर से स्पष्ट है। मध्य प्रदेश, बिहार, ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में किसानों द्वारा पसंद की जाने वाली यह प्रणाली वनस्पति तेल उत्पादन में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती है, कृषि समुदाय के लिए खाद्य सुरक्षा और आर्थिक समृद्धि को बढ़ाती है

“मिट्टी की गुणवत्ता—खेती की पहचान।”

१३

भारतीय कृषि पर रतन टाटा का स्थायी प्रभावः नवाचार और ग्रामीण विकास की विरासत

डॉ. आर. पी. शर्मा,
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, उदयपुर-313001, राजस्थान

उद्योग जगत के दिग्गज राष्ट्रीय प्रतीक रतन टाटा का 86 वर्ष की आयु में कल निधन हो गया। आज भारत वर्ष का हर नागरिक उनके योगदान याद कर रहा हैं। इस लेख में हम रतन टाटा के कृषि क्षेत्र में योगदान का उल्लेख करेंगे। 28 दिसंबर 1937 को जन्मे रतन टाटा भारत के सबसे सम्मानित उद्योगपतियों में से एक और टाटा समूह की होल्डिंग कंपनी टाटा संस के पूर्व अध्यक्ष थे। हालाँकि टाटा को विशेष रूप से एक कृषि नेता के रूप में नहीं जाना गया मगर भारत के कृषि क्षेत्र में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है, विशेष रूप से उनके नेतृत्व में टाटा समूह की कंपनियों और परोपकारी शाखाओं द्वारा की गई विभिन्न पहलों के माध्यम से। यह लेख रतन टाटा के प्रारंभिक जीवन से लेकर टाटा संस के अध्यक्ष के रूप में उनके कार्यकाल तक और उससे आगे, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि में उनके योगदान को रेखांकित करता है।

प्रारंभिक जीवन और पृष्ठभूमि:

रतन टाटा का जन्म प्रतिष्ठित टाटा परिवार में हुआ था, जो लंबे समय से भारत के औद्योगिक विकास और सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ा रहा है। उनके दादा जे. आर. डी. टा ने भारत के औद्योगिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जबकि रतन टाटा को कॉर्नेल विश्वविद्यालय में एक वास्तुकार के रूप में प्रशिक्षित किया गया था, टाटा समूह में उनका नेतृत्व पारंपरिक औद्योगिक डोमेन से कहीं आगे तक फैला हुआ था और इसमें आईटी, स्टील, ऑटोमोटिव, ऊर्जा और कृषि जैसे क्षेत्र शामिल थे।

1.टाटा केमिकल्स एंड एग्रीकल्चरल इनपुट्स:

टाटा केमिकल्स लिमिटेड (टीसीएल) टाटा समूह की प्रमुख कंपनियों में से एक है, जिसका कृषि पर विशेष ध्यान है, विशेष रूप से खेती के लिए उर्वरकों और रसायनों के उत्पादन और वितरण में।

- **उर्वरक उत्पादनः** रतन टाटा के नेतृत्व में, टाटा केमिकल्स ने अपने उर्वरक व्यवसाय का उल्लेखनीय रूप से विस्तार किया, और यूरिया, अमोनिया और अन्य आवश्यक कृषि आदानों के उत्पादन में एक प्रमुख खिलाड़ी बन गया। टाटा केमिकल्स ने फॉस्फेट और नाइट्रोजन-आधारित उर्वरकों का उत्पादन किया जिसने भारतीय किसानों के लिए फसल की पैदावार बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **टिकाऊ कृषि पहलः** टाटा केमिकल्स ने टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने का बीड़ा उठाया। अपनी सहायक कंपनी, रैलिस इंडिया के माध्यम से, कंपनी ने भारतीय किसानों को पर्यावरण-अनुकूल कृषि पद्धतियों में बदलाव में मदद करने के लिए विभिन्न जैव-कीटनाशकों और जैविक खेती समाधान पेश किए।
- **किसान सहायता कार्यक्रमः** कंपनी ने टाटा किसान संसार (टीकेएस) जैसी पहल शुरू की, जिसने किसानों को कृषि सर्वोत्तम प्रथाओं, गुणवत्ता वाले बीज, फसल सुरक्षा तकनीकों, मिट्टी के स्वास्थ्य सुधार समाधान और बाजार संबंधों के बारे में व्यापक जानकारी प्रदान की।

2.टाटा ट्रस्ट और ग्रामीण विकास:

रतन टाटा के नेतृत्व में टाटा ट्रस्ट - टाटा समूह की परोपकारी शाखा - ने कृषि उत्पादकता, ग्रामीण आजीविका और खाद्य सुरक्षा में सुधार लाने के उद्देश्य से कई ग्रामीण विकास पहलों का नेतृत्व किया।

- **कृषि और संबद्ध क्षेत्र के कार्यक्रमः** टाटा ट्रस्ट ने प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, टिकाऊ कृषि पद्धतियों और किसानों की क्षमता निर्माण पर केंद्रित विभिन्न पहल शुरू कीं। ट्रस्टों ने वाटरशेड प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य सुधार और जलवायु-लचीली कृषि को बढ़ावा देने पर भी बड़े पैमाने पर काम किया।
- **कृषि में नवाचारः** टाटा ट्रस्ट ने कृषि में नवीन प्रौद्योगिकियों के उपयोग को प्रोत्साहित किया। उन्होंने किसानों के लिए सूचना, वित्तीय सेवाओं और बाजार मूल्यों तक पहुंच के लिए मोबाइल-आधारित प्लेटफॉर्म विकसित करने में निवेश किया।
- **टाटा जल मिशनः** टाटा ट्रस्ट का एक महत्वपूर्ण फोकस क्षेत्र जल प्रबंधन रहा है, जो कृषि के लिए महत्वपूर्ण है। टाटा जल मिशन का लक्ष्य ग्रामीण भारत के लिए सुरक्षित और टिकाऊ जल समाधान प्रदान करना है। इस पहल का छोटे और सीमांत किसानों के लिए सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने पर सीधा प्रभाव पड़ा है।

3.टाटा मोटर्स और कृषि मशीनीकरण:

कृषि, विशेष रूप से ग्रामीण भारत में, टाटा समूह की प्रमुख कंपनियों में से एक, टाटा मोटर्स से अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हुई।

- **किसानों के लिए किफायती परिवहनः** टाटा मोटर्स के वाणिज्यिक वाहन, विशेष रूप से टाटा ऐस जैसे उसके मिनी ट्रक, छोटे किसानों को उनकी उपज को स्थानीय बाजारों तक पहुंचाने के लिए एक किफायती समाधान प्रदान करते हैं। इससे किसानों की बाजार पहुंच में सुधार हुआ और उन्हें अपनी फसलों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद मिली।
- **फार्म मशीनरीः** हालांकि टाटा मोटर्स सीधे तौर पर ट्रैक्टर या अन्य कृषि उपकरणों के निर्माण में शामिल नहीं थी, लेकिन इसके वाणिज्यिक वाहन ग्रामीण आपूर्ति श्रृंखला में अभिन्न अंग रहे हैं, जो कृषि से संबंधित लॉजिस्टिक्स के मशीनीकरण और आधुनिकीकरण में मदद करते हैं।

4.टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज (TCS) और कृषि में प्रौद्योगिकी:

दुनिया की सबसे बड़ी आईटी कंपनियों में से एक के रूप में, टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज (टीसीएस) ने भारतीय कृषि में प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

- **डिजिटल कृषि प्लेटफॉर्म**: टीसीएस ने डिजिटल प्लेटफॉर्म और समाधान विकसित किए जिससे किसानों को सूचित निर्णय लेने में मदद मिली। इन प्लेटफार्मों ने किसानों को मौसम पूर्वानुमान, फसल सलाहकार सेवाएं और वास्तविक समय की बाजार जानकारी प्रदान की, जिससे उन्हें उत्पादकता में सुधार और फसल के नुकसान को कम करने में मदद मिली।
- **एमकृषि पहलः** टीसीएस का एमकृषि प्लेटफॉर्म छोटे और सीमांत किसानों को मोबाइल फोन के माध्यम से कृषि विशेषज्ञों, सरकारी योजनाओं और बाजार संपर्कों से जोड़ने के कंपनी के प्रयासों का एक प्रमुख उदाहरण है। यह पहल, जिसे रतन टाटा के कार्यकाल के दौरान विकसित किया गया था, इसका उद्देश्य किसानों और विशेषज्ञों के बीच संचार में सुधार करना, उन्हें महत्वपूर्ण डेटा तक पहुंच प्रदान करना है जो पैदावार में सुधार कर सकता है और जोखिमों को कम कर सकता है।

5.टाटा एग्रिको और कृषि उपकरण:

टाटा एग्रीको, टाटा स्टील की सहायक कंपनी, एक सदी से भी अधिक समय से कुदाल, दरांती और गैंती जैसे उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उपकरण का उत्पादन कर रही है। रतन टाटा के नेतृत्व के दौरान, कंपनी ने अपने उत्पाद पोर्टफोलियो का विस्तार किया और इन उपकरणों की गुणवत्ता में वृद्धि की, जिससे छोटे किसानों को अधिक कुशल, टिकाऊ उपकरणों से मदद मिली जिससे श्रम उत्पादकता में वृद्धि हुई।

6. कृषि अनुसंधान एवं विकास के लिए सहायता:

टाटा समूह लंबे समय से कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास का समर्थक रहा है।

- **कृषि अनुसंधानः** टाटा ट्रस्ट और टाटा समूह की कंपनियों ने कृषि में वैज्ञानिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए कृषि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों और गैर सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी की है। इसमें फसल की किस्मों, मिट्टी के स्वास्थ्य और टिकाऊ कृषि पद्धतियों पर अनुसंधान का वित्त पोषण शामिल है।
- **संस्थागत सहयोगः** टाटा समूह ने फसल लचीलापन और उत्पादकता में सुधार के लिए आगे के शोध के लिए अंतर्राष्ट्रीय अर्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (आईसीआरआईएसएटी) और विभिन्न आईसीएआर (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद) संस्थानों जैसे कृषि संस्थानों के साथ सहयोग किया।

7. टाटा स्टील और कृषि विकास:

टाटा स्टील की कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (सीएसआर) पहल ने इसके परिचालन क्षेत्रों के पास, खासकर झारखंड और ओडिशा जैसे राज्यों में ग्रामीण समुदायों के कृषि विकास में योगदान दिया है।

- **किसान सहकारी समितियां और स्वयं सहायता समूह (एसएचजीः** टाटा स्टील ने स्थायी कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने, फसल पैटर्न में विविधता लाने और बाजार संपर्क प्रदान करने के लिए स्थानीय किसानों की सहकारी समितियों के साथ काम किया।
- **कौशल विकास कार्यक्रमः** कंपनी ने किसानों को आधुनिक तकनीकों पर प्रशिक्षित करने, उनके ज्ञान के आधार और कृषि पद्धतियों में सुधार करने के लिए कृषि कौशल विकास कार्यक्रम भी शुरू किए।

8. कृषि नीति की वकालत:

रतन टाटा सार्वजनिक नीति के भी समर्थक रहे हैं जो ग्रामीण विकास, कृषि और गरीबी उन्मूलन का समर्थन करती है। उनके नेतृत्व में, टाटा समूह ने खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों, ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के विकास और किसानों के लिए वित्तीय सेवाओं तक पहुंच बनाने जैसी पहल का समर्थन किया।

2012 में टाटा संस के अध्यक्ष पद से हटने के बाद भी, रतन टाटा ने स्टार्टअप और सामाजिक उद्यमों के साथ अपनी भागीदारी के माध्यम से भारत में कृषि नवाचार को प्रभावित करना जारी रखा । वह इसमें सक्रिय रूप से शामिल रहे। रतन टाटा ने किसानों के लिए कृषि उत्पादकता, बाजार पहुंच और वित्तीय समावेशन में सुधार के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के उद्देश्य से विभिन्न

एग्री-टेक स्टार्टअप्स में निवेश किया । अपने विभिन्न उद्यम पूंजी कोषों के माध्यम से, उन्होंने उन कंपनियों में निवेश किया जो जल प्रबंधन, जलवायु-लचीली कृषि और सटीक खेती से संबंधित महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

निष्कर्ष:

रतन टाटा के नेतृत्व या समर्थन वाले व्यवसायों और परोपकारी पहलों के माध्यम से उनका कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा । कृषि आदानों में नवाचारों को बढ़ावा देकर, ग्रामीण विकास का समर्थन करके और कृषि में प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाकर, उन्होंने अनगिनत भारतीय किसानों की आजीविका को बेहतर बनाने में मदद की है। कृषि-तकनीक और ग्रामीण विकास में निवेश के साथ-साथ टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने में उनके नेतृत्व ने भारत के कृषि क्षेत्र पर स्थायी प्रभाव डाला है । इस योगदान के लिए भारत ही नहीं पूरी दुनिया का हर किसान रतन टाटा को याद करता रहेगा ।

“उपजाऊ मिट्टी पर खड़ी हर फसल मेहनत, विज्ञान और प्रकृति की साझेदारी है।”
“मिट्टी सिर्फ जमीन नहीं—जीवन का पहला पृष्ठ है।”

१४

भारतीय कृषि में फसल विविधीकरणः अवसर और चुनौतियाँ

आर. एल. मीणा, महावीर नोगिया, बृजेश यादव, पी. सी. मोहराना, लाल चन्द मालव, अभिषेक जांगिड,
आर. एस. मीणा, आर. पी. शर्मा एवं बी. एल. मीना
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो-क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर-313001
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

फसल विविधीकरण क्या है?

फसल विविधीकरण एक कृषि प्रबंधन रणनीति है, जिसमें किसान अपनी जमीन पर एक ही फसल की जगह कई प्रकार की फसलों को उगाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन को बढ़ाना, जोखिम को कम करना, और पर्यावरणीय स्थिति के अनुकूल फसलों को उगाना है। फसल विविधता से किसान कई लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जैसे कि आय में स्थिरता, मिट्टी की उर्वरता में सुधार, और फसल रोगों एवं कीटों से बचाव।

- फसल विविधीकरण से तात्पर्य नई फसलों या फसल प्रणालियों से कृषि उत्पादन को जोड़ने से है, जिसमें एक विशेष कृषि क्षेत्र पर कृषि उत्पादन के पूरक विपणन अवसरों के साथ मूल्यवर्द्धित फसलों से विभिन्न तरीकों से लाभ मिल रहा है।
- फसल विविधीकरण आवश्यक है क्योंकि यह किसानों को एक से अधिक फसलों की खेती करने में सक्षम बनाता है, जिससे आय में वृद्धि होती है, जोखिम कम होता है और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है।

फसलों में विविधता लाने के कई अलग-अलग तरीके हैं, लेकिन कुछ सामान्य तरीके इस प्रकार हैंः

- एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाना। इससे फसल के खराब होने के जोखिम को कम करने में मदद मिल सकती है, अगर कोई फसल कीटों, बीमारियों या मौसम की स्थिति से प्रभावित हो।
- साल-दर-साल फसलों का चक्रीकरण। इससे मिट्टी को स्वस्थ रखने में मदद मिलती है और कीटों और बीमारियों के विकास को रोका जा सकता है।
- उच्च मूल्य वाली फसलें उगाना। इन फसलों की बाजार में अधिक कीमत मिल सकती है, जिससे लाभ बढ़ाने में मदद मिल सकती है।
- पशुधन और फसलों का एकीकरण। इससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है और पशुधन उत्पादों से अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

फसल विविधीकरण के प्रकारः-

1.एकल फसली व्यवस्थाः

इस प्रक्रिया में खेतों में मिट्टी और जलवायु के आधार पर बार-बार एक ही फसल उगाई जाती है। इस तरीके का इस्तेमाल उन क्षेत्रों में होता है, जहां वर्षा का अभाव होता है, और सिंचाई की भी उचित व्यवस्था नहीं होती है। ऐसी फसल विविधीकरण का प्रयोग अधिकतर खरीफ के मौसम में किया जाता है।

2.अंतर फसली व्यवस्थाः

इस विधि में खेतों में अलग-अलग कतार बनाकर एक साथ एक से ज्यादा फसलें उगाई जाती हैं। इस विधि को अंतरवर्ती खेती भी कहा जाता है। जैसे कि टमाटर की फसल के तीन कतार के बीच सरसों, आलू, मसूर और मटर की खेती की जा सकती है।

3.रिले क्रॉपिंगःरिले क्रॉपिंग प्रणाली में खेत को कई हिस्सों में बाट दिया जाता हैं। इस विधि में भूमि के एक हिस्से में दो, तीन तरह की फसलें उगाई जा सकती हैं। इस पद्यति से खेती करने के लिए खेत में पहले बोई गई फसल की कटाई करने के बाद ही दूसरी फसल की बुवाई की जाती है।

4.मिश्रित अंतर फसली:

मिश्रित कृषि में एक खेत में एक समय में दो से तीन फसलों को अलग-अलग साथ में उगाया जाता है। इससे खेत की उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

5.अवनालिका फसल प्रणाली:

एली क्रॉपिंग की खेती में बड़े पेड़ों की पंक्तियों के बीच सब्जियां और चारे वाली फसलें लगाई जाती हैं। इस फसल पंक्ति में पेड़ों के साथ सब्जियों का भी उत्पादन लेकर किसान अच्छी आमदनी ले सकते हैं।

फसल विविधीकरण के लाभ:-

छोटी भूमि पर आय में वृद्धि: वर्तमान में भारत के 70-80 प्रतिशत किसानों के पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि है। इसे दूर करने के लिये मौजूदा फसल के पैटर्न को उच्च मूल्य वाली फसलों जैसे कि दलहन और तिलहन इत्यादि का विविधीकरण किया जाना चाहिये।

आर्थिक स्थिरता: फसल विविधीकरण विभिन्न कृषि उत्पादों की कीमत में उतार-चढ़ाव को बेहतर ढंग से वहन कर सकता है और यह कृषि उत्पादों की आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है।

प्राकृतिक आपदाओं को कम करना: जैविक (रोग, कीट तथा निमेटोड) तथा अजैविक (सूखा, क्षारीयता, जलाक्रांति, गरमी, ठंड तथा पाला) पारिस्थितियों के कारण फसल उत्पादन कम हो सकता है। इस परिस्थिति में मिश्रित फसल के माध्यम से फसल विविधीकरण उपयोगी हो सकता है।

संतुलित भोजन की मांग: अधिकांश भारतीय आबादी कुपोषण से पीड़ित है। ज्यादातर महिलाओं में एनीमिया होता है। खाद्य टोकरी में (दलहन, तिलहन, बागवानी और सब्जी) गुणवत्ता बढ़ाकर सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं और खाद्य सुरक्षा और पोषण सुरक्षा के उद्देश्य से मृदा स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं।

घटता जलस्तर: धान उत्पादन में जल की आवश्यकता अधिक होती है, 1 किलोग्राम चावल उत्पन्न करने के लिए लगभग 2500 लीटर जल की आवश्यकता होती है। कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों को रोटेशन में एकीकृत करने से चावल या गन्ने जैसी जल-गहन फसलों पर अत्यधिक निर्भर मोनोकल्चर प्रणालियों की तुलना में समग्र पानी की खपत कम हो जाती है।

संरक्षण: फसल विविधीकरण को अपनाने से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मदद मिलती है, जैसे कि चावल-गेहूँ की फसल प्रणाली में दलहन फसल लगाना, जो मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करने के लिये वायुमंडलीय नाइट्रोजन को ठीक करने की क्षमता रखती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सहायता से किसान अपने खेतों की मृदा के बेहतर स्वास्थ्य और उर्वरता में सुधार के लिये पोषक तत्त्वों का उचित मात्रा में उपयोग करने के साथ ही मृदा की पोषक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।

भारत में फसल विविधीकरण में किसानों के सामने आने वाली समस्याएँ:-

वित्तीय बाधाएँ: फसलों में विविधता लाने के लिए बीज, उपकरण और ज्ञान के संदर्भ में अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता हो सकती है। छोटे किसान, जो भारत के कृषक समुदाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, को नई पद्धतियों को अपनाने में वित्तीय बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है।

जलवायु संवेदनशीलता: जलवायु परिवर्तन फसल विविधीकरण प्रयासों के लिए जोखिम पैदा कर सकता है। कुछ फसलें चरम मौसम की घटनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकती हैं, जिससे उपज और लाभप्रदता प्रभावित हो सकती है।

सीमित बाजार अवसर: कम लोकप्रिय फसलों के लिए सीमित बाजार अवसरों के कारण इसे चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सरकारें ऐसी फसलों के लिए मजबूत बाजार संपर्क बनाकर या ताजा उपज की खरीद-फरोख्त के लिए स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र स्थापित करके मदद कर सकती हैं।

फसल चयन और उपयुक्तताः फसलों के सही संयोजन की पहचान करना आवश्यक है जो एक-दूसरे के पूरक हों और किसी क्षेत्र की विशिष्ट कृषि-जलवायु परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हों। अनुचित फसल चयन से उपज में कमी और आर्थिक नुकसान हो सकता है।

बाजार में अस्थिरताः विविध फसलों के बाजार मूल्य अस्थिर हो सकते हैं, जिससे किसानों के लिए अपनी आय का अनुमान लगाना और उसकी योजना बनाना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। कीमतों में उतार-चढ़ाव विविधीकरण की समग्र लाभप्रदता को प्रभावित कर सकता है।

कृषि पद्धतियां और ज्ञानः पारंपरिक कृषि पद्धतियां और आधुनिक तकनीकों की जानकारी का अभाव, विविध फसल प्रणालियों को सफलतापूर्वक लागू करने में किसानों की क्षमता को सीमित कर सकता है।

सीमित बाजार अवसरः पारंपरिक फसलों की माँग अक्सर ज्यादा होती है, और कम ज्ञात या गैर-प्रधान फसलों के लिए बाजार संपर्क सीमित हो सकते हैं। अगर किसान अपनी उपज बेचने या नई फसलों के उचित मूल्य पाने को लेकर अनिश्चित हैं, तो वे विविधता लाने में हिचकिचा सकते हैं।

जागरूकता का अभावः कई किसान अपने विशिष्ट क्षेत्रों और जलवायु में उगाई जाने वाली उपयुक्त फसलों के लाभों या उनके बारे में जागरूक नहीं हो पाते। उपयुक्त फसल संयोजनों और उनके लाभों के बारे में जानकारी का अभाव, फसलों को अपनाने में बाधा डालता है।

जोखिम से बचनाः किसान जोखिम से बचने की प्रवृत्ति रखते हैं और उन फसलों को ही प्राथमिकता देते हैं जिनसे वे परिचित हैं और जिन्हें उन्होंने पहले सफलतापूर्वक उगाया है। नई फसलों के प्रदर्शन और लाभप्रदता के बारे में अनिश्चितता विविधीकरण को हतोत्साहित कर सकती है।

बुनियादी ढाँचा और भंडारण चुनौतियाँः अपर्याप्त भंडारण और कटाई-पश्चात बुनियादी ढाँचे के कारण विविध फसलों की बर्बादी और खराबियाँ हो सकती हैं। उपज की गुणवत्ता और बाजार मूल्य बनाए रखने के लिए उचित भंडारण सुविधाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

नीतिगत समर्थनः किसानों को अपनी फसलों में विविधता लाने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु सरकार की ओर से पर्याप्त नीतिगत समर्थन और प्रोत्साहन आवश्यक हैं। सहायक नीतियों में मूल्य आश्वासन, बेहतर बाजार संपर्क, इनपुट पर सब्सिडी और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना शामिल हो सकता है।

निष्कर्षः-

फसल विविधीकरण का निष्कर्ष यह है कि यह किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति है जो उन्हें आय, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण को बेहतर बनाने में मदद करती है। विविधीकरण से किसानों को जोखिम कम करने, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने और अधिक टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने में मदद मिलती है. अंतर-फसल, बहु-फसल और एकीकृत फसलः अंतर-फसल और पूर्ववर्ती या उत्तराधिकारी फसलों के रूप में नई फसलों को जोड़ने, फसल की संख्या में परिवर्तन (बहु-फसल), फसल प्रणाली को संशोधित करने और बदलती कृषि प्रथाओं के साथ एक नई मुख्यधारा की फसल पद्धति को अपनाने के माध्यम से फसलों और फसल के पैटर्न को बदलने की तत्काल आवश्यकता है।

१५

मशरुम की खेती एवं मशरुम की उपयोगिता

सविता मीणा,अजीत कुमार मीना,दीपक एस. मोहेकर
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

परिचय:

मशरूम की खेती एक लाभकारी और पर्यावरण के अनुकूल कृषि पद्धति है। यह खेती कम स्थान में की जा सकती है और इसे कम निवेश के साथ प्रारंभ किया जा सकता है। मशरूम में उच्च पोषक तत्व होते हैं, जैसे प्रोटीन, फाइबर, और विटामिन्स, जो इसे एक स्वास्थ्यवर्धक खाद्य सामग्री बनाते हैं। इसके अलावा, मशरूम की खेती को बढ़ावा देने से किसानों को एक नया आय स्रोत मिलता है।सामान्य रूप से छत्तेदार खाद्य फफूंदी (कवक) को मशरूम या खुंभी कहते हैं। मशरूम जिसे क्षेत्रीय भाषाओं में खुम्भ, छत्रक, गर्जना एवं धरती के फूल आदि नामों से जाना जाता है। अपनी पौष्टिकता एवं अन्य बहुमूल्य गुणों के कारण रोम में इसे फूड ऑफ गाड (भगवान का भोजन) कहा जाता है। भारत में इसे सब्जियों की मल्लिका भी कहा जाता है। प्रायः मशरूम में ताजे वजन के आधार पर 89-91 प्रतिशत पानी, 0.99-1.26 प्रतिशत रसायन 2.78-3.94 प्रतिशत प्रोटीन, 0.25-0.65 प्रतिशत वसा, 0.07-1.67 प्रतिशत रेशा, 1.30-6.28 प्रतिशत कार्बेहांइड्रेट और 24.4-34.4 किलो केलोरी ऊर्जामान होता है। यह विटामिनों जैसे द बी 1, बी 2, सी एंड डी एवं खनिज लवणों से भरा होता है। यह कई बीमारियों जैसे द बहुमूत्र, खून की कमी, बेरी-बेरी, कैंसर, खाँसी, मिर्गी, दिल की बीमारी में लाभदायक होता है। इसकी खेती कृषि, वानिकी एवं पशु व्यवसाय सम्बन्धी अवशेषों पर की तथा उत्पादन के पश्चात बचे अवशेषों को खाद के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। उत्पादन हेतु बेकार एवं बंजर भूमि का समुचित उपयोग मशरूम गृहों का निर्माण करके किया जा सकता है। इस प्रकार यह किसानों एवं बेरोजगार नवयुवकों के लिए एक सार्थक आय का माध्यम हो सकता है।

मशरुम की प्रजातियाँ:

- अगेरिक्स या बटन मशरूम इसे कम्पोस्ट पर 18-25 सें. तापक्रम पर जोड़े में उगाया जा सकता है।
- ऑयस्टर या ढिगरी या प्लूरोट्स मशरूम इसे 20-25 सें. तापक्रम पर सभी मौसम में उगाया जा सकता है।
- बॉलवेरिया धान के पुआल वाला मशरूम इसे 30-40 सें. तापक्रम पर गर्मी में उगाया जाता है।

मशरूम की खेती क्यों करें:

- फसलों के अवशेषों तथा कृषि आधारित कुटीर उद्योग धन्धों से निकलने वाले अवशेष पदार्थों का प्रयोग।
- बन्द कमरे में खेती करने के कारण कम से कम जगह की आवश्यकता।
- पोषकीय एवं औषधीय गुणों से भरपूर।
- विभिन्न रोगों के प्रति रोग प्रतिरोधी क्षमता।
- प्रत्येक आयु वर्ग के लिए रोजगार का साधन।
- आय का अतिरिक्त स्रोत।
- कुटीर उद्योग धन्धों का बढ़ावा।
- प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन।
- 9.वातावरण के अनुकूल (इकोफ्रेंडली)।
- कृतिक दशा में खरीफ में दो प्रकार से मशरूम की खेती की जा सकती है।

मशरूम के स्पॉन तैयार करने की विधि:

मशरूम का उत्पादन बीज द्वारा किया जाता है, लेकिन ये वास्तविक बीज नहीं होते हैं। मशरूम के बीज को स्पॉन कहा जाता है। इनका उत्पादन कीटाणुरहित अवस्था में वानस्पतिक प्रवर्धन तकनीक द्वारा छत्रक से प्राप्त कवक जाल से किया जाता है। इसके लिए तकनीकी जानकारी एवं एक अच्छी प्रयोगशाला का होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए मशरूम बीज को किसी सरकारी या गैर सरकारी मशरूम बीज उत्पादक संस्थाओं से ही प्राप्त करना चाहिए।

मशरूम का बीज प्रायः गेंहू के दानों पर बनाया जाता है। गेहूं को उसके दोगुनी मात्रा में पानी डालकर 20 द्द 25 मिनट तक उबाला जाता है। इसके अतिरिक्त पानी निकालने के बाद उसे छाया में 2 द्द 3 घंटों तक सुखाया जाता है। इसके पश्चात् इन दानों में 2 प्रतिशत जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) तथा 0.5 प्रतिशत चॉक पाउडर (कैल्शियम कार्बोनेट) अच्छी तरह मिला देते हैं अब इन दानों को कांच की बोतलों में लगभग 300 ग्राम प्रति बोतल की दर से भर बंद कर दिया जाता है। इन बोतलों को जीवाणुरहित करने के लिए 22 पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर ऑटोक्लेव में डेढ़ से 2 घंटे के लिए रखा जाता है। ऑटोक्लेव सेन निकाल कर बोतलों को ठंडा होने के बाद पहले से तैयार शुद्ध कवक जाल संवर्धन को इन बोतलों में डाल देते हैं और 250 सेल्सियस पर ऊष्मायंत्र में रख दिया जाता है। इस प्रकार लगभग टी सप्ताह में मास्टर संवर्धन तैयार हो जाता है।

बीजाई के लिए बीज बनाने हेतु गेहूं उबालने से लेकर रसायन मिलाने तक की प्रक्रिया समान ही होती है, परंतु कांच की बोतलों की जगह पॉलिप्रोपाइलिन की थैलियों का प्रयोग किया जाता है। इन थैलियों का प्रयोग किया जाता है। इन थैलियों में 500 ग्राम बीज भरकर मोटे प्लास्टिक के छल्लों में पिरो लिया जाता है और रूई के ढक्कन से थैलियों के मूंह को बंद कर दिया जता है। इसके बाद इन थैलियों को 22 पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर ऑटोक्लेव में डेढ़ घंटे तक जीवाणुरहित किया जाता है। ठंडा होने के बाद इन थैलियों को निजर्मीकृत कमरे में ले जाता है। पहले से बनाये गये मास्टर संवर्धन से लगभग 50 दाने प्रत्येक पॉलिप्रोपाइलिन की थैलियों में डाल दिए जाते हैं। इन थैलियों को 250 सेल्सियस तापमान पर ऊष्मायंत्र में 2 -3 सप्ताह के लिए रखा जाता है। यह शुद्ध संवर्धन अब बिजाई के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

मशरूम की बुआई एवं छत्रकों का उत्पादन:

ढिंगरी या आयस्टर मशरूम पश्चिमी राजस्थान क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रिय मशरूम है। ढिंगरी के छत्रक आकर में सिप्पीनुमा, बड़े चम्मच, प्लेट या पंखनुमा होते हैं। इस मशरूम की विभिन्न प्रजातियों में छत्रक विभिन्न रंगों जैसे सफेद, भूरे, पीले, गुलाबी, कत्थाई आदि के होते हैं। विश्व में ढिंगरी की कई प्रजातियों का व्यावसायिक उत्पादन हो रहा है जिनमें प्लूरोटस सेपीडस, प्लूरोटस साजोर काजू, प्लूरोटस साईंट्रिनोपीलीएट्स, प्लूरोटस ऑस्ट्रिएट्स आदि प्रमुख हैं।व्यावसायिक स्तर पर ढिंगरी की खेती गेहूं के उपचारित भूसे पर की जाती है। इसके लिए करीब 90 से 100 लीटर पानी में 10 से 12 किग्रा. सूखे भूसे को प्लास्टिक या लोहे के ड्रम में भिगो दिया जाता है। साथ ही 10 लीटर पानी में 7.5 ग्राम बाविस्टीन तथा 125 मिलीलीटर फार्मेलिन घोलकर इसे भूसे में मिला दिया जाता है। इसके तुरंत बाद ड्रम को धक देना चाहिए। लगभग 18 घंटे बाद गीले भूसे को एक साफ जाली पर रखा जाता है। इससे अधिक पानी निकल जाता है। फिर भूसे को तिरपाल पर निकल जाता है। फिर भूसे को तिरपाल पर निकालकर आधे घंटे के लिए सूखा लिया जाता है।

बिजाई के लिए 200 से 250 ग्राम तैयार बीज प्रति 10 से 12 किग्रा. गीले भूसे में मिलाया जाता है। बिजाई भूसा और बीज की परत बनाकर पॉलीथिन की थैली को भरकर बंद करे दिया जाता है। इन थैलियों के दोनों कोने नीचे से काट दिए जाते हैं और बिजाई के बाद हर थैली में सूजे की सहायता से 25 से 30 छेद कर, एक बंद अँधेरे कमरे में 12 से 18 दिनों के लिए (24 द्द 270 सेल्सियस तापमान पर) कवक जाल को फैलने के लिए यानी स्पाननरन के लिए लोहे या बांस के रेकों में रख दिया जाता है। इस दौरान कवक जाल फैलकर थैलों में छत्रक की शुरूआत करने लगते हैं। जब मशरूम का कवकजाल पूरी तरह भूसे में फैल जाये तब भूसे के थैले सफेद रंग के दिखाई देने लगते हैं। इस स्थिति में पॉलीथीन को पूरी तरह हटाकर भूसे के ब्लॉक को उत्पादन कक्ष में रेकों पर रख दिया जाता है और दिन में 2 -3 बार पानी का छिड़काव किया जाता है। स्वच्छ हवा के लिए कमरे की खिड़की को एक से आधे घंटे के लिए खोल देना चाहिए। पॉलीथीन हटाने के एक सप्ताह के बाद मशरूम के छोटे द्द छोटे छत्रक बनने लगते हैं.जो 4 से 5 दिनों से पूर्ण आकार ले लेते हैं।

राजस्थान की जलवायु में ढिंगरी की खेती प्रायः अक्टूबर से फरवरी माह तक आसानी से की जा सकती है। ठंडे मौसम में प्लूरोटस ऑस्ट्रीएट्स, प्लूरोटस फ्लोरीडा, प्लूरोटस कर्नूकोपिया तथा प्लूरोटस ऐरेन्जाई तथा गर्मियों में (20-280 सेल्सियस तापमान पर) प्लूरोटस सेपिड्स, प्लूरोटसफ्लेबीलेट्स, प्लूरोटस साजोर , काजू, प्लूरोटस साईंट्रिनोपीलीएट्स टाटा प्लूरोटस मैमब्रेनेसियम आसानी से उगायी जा सकती है।

मशरूम उत्पादन में रोग प्रबंधन:

भूसे की थैलों में कवक जाल के विस्तार को नियमित रूप में देखते रहना चाहिए। इसके अलावा उसमे होने वाली किसी भी प्रकार के रंग परिवर्तन के लिए जागरूक रहना चाहिए। यदि थैलों में काले, नील या हरे रंग के धब्बे दिखाई दने तो ऐसे थैलों को उत्पादन कक्ष से बाहर निकाल कर दूर फेंक देना चाहिए। जिस कमरे में मशरूम का उत्पादन किया जा रहा है।, उसका तापमान 20 से 250 सेल्सियस होना चाहिए। अगर कमरे का तापमान 280 सेल्सियस से ज्यादा बढ़ जाये ओ उसकी दीवारों तथा छत पर दो द तीन बार पानी का छिड़काव करना चाहिए। इस दौरान यह ध्यान रखें कि थैलों पर पानी इकट्ठा न हो। थैले भरने के अगले दिन से एक दिन के अंतराल पर नुवान नामक दवा का छिड़काव करना चाहिए। थैलों में यदि इल्लियाँ दिखाई दें तो इसका छिड़काव दिन में 3 से 4 बार भी किया जा सकता है। किन्तु इसका ध्यान रखना चाहिए कि फसल लगाने के 15 दिनों तक ही नुवान का छिड़काव कर सकते हैं। इसके बाद छिड़काव नहीं करना चाहिए। मशरूम उत्पादन कक्ष के अवांछित कारकों की वृद्धि की रोकथाम के लिए डाइक्लोरोवास दवा के 76 प्रतिशत पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

मशरूम की तुड़ाई:

करीब 7 से 8 दिनों में ये छत्रक ऊपर की ओर मुड़ने लगते हैं। इस अवस्था में मशरूम तोड़ने लायक हो जाती है। इस प्रकार 4 से 5 बार नये छत्रक बनते हैं और पहली तुड़ाई के 8 से 10 दिनों के बाद फिर से हर ब्लॉक में नये छत्रक बनते हैं और बड़े होने पर तोड़ लिए जाते हैं। छत्रकों को हमेशा पानी का छिड़काव से तोड़ना चाहिए। एक फसल लगभग डेढ़ महीने तक चलती है। फसल की अंतिम तुड़ाई के बाद खेती के लिए प्रयुक्त सभी थैलों को एक गड्ढे में इकट्ठा कर लिया जाता है। ये थैले सड़कर कुछ दिनों में खाद बन जाते हैं, जिन्हें खेतों में खाद की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

भंडारण:

मशरूम के छत्रकों को तोड़ने के बाद इसे लगभग डेढ़ से दो घंटे के इए एक कपड़े पर फैला देना चाहिए, जिससे उस पर नमी समाप्त हो जाये। इन छत्रकों को ताजा ही बाजार में बेचा जा सकता है अथवा छत्रकों को मांग के अनुसार, छिद्रदार पॉलीथीन में इक्ट्ठा करके रेफ्रिजेटर में तीन से चार दिनों तक रखा जा सकता है। इसके अलावा छत्रकों को धूप में सुखाकर कई दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

मशरूम की खेती में लागत एवं लाभ का अनुपात:

एक किग्रा. गेहूं के सूखे भूसे से लगभग 700 से 800 ग्राम तक मशरूम की पैदावार ली जा सकती है। एक किग्रा. स्पान से लगभग 10 थैल आसानी से भर जाते हैं। इस प्रकार इसकी खेती के लिए सूखा भूसा एवं गेहूं मुख्य सामग्री है। एक बार सभी आवश्यक सामग्री खरीदने के बाद मशरूम की खेती के लिए लागत एवं लाभ का अनुमान एक अनुपात दो से अधिक आता है अर्थात किसान भाई इसकी खेती करके दोगुना लाभ आसानी से कमा सकते हैं। इसके अलावा मशरूम के मूल्य संवर्धित उत्पादों जैसे अचार आदि का उत्पादन करके अथवा इसको सुखाकर बेचने से अधिक आय प्राप्त की सकती है।

निष्कर्ष:

मशरूम की खेती एक अत्यंत लाभकारी और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अनुकूल विकल्प है। यह किसानों को कम लागत में उच्च आय प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। इसके पोषक तत्वों के कारण यह मानव स्वास्थ्य के लिए भी बहुत लाभकारी है। मशरूम की खेती को बढ़ावा देने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया जा सकता है और किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। कुल मिलाकर, मशरूम की खेती कृषि क्षेत्र में एक नई दिशा प्रदान करती है, जो भविष्य में स्थिर और सतत कृषि विकास के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है।

१६

मृदा अपरदन: कारण, प्रकार और मृदा संरक्षण

लक्ष्मणनारायण, सविता मीणा, अजीत कुमार मीना
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

परिचय:

मिट्टी एक बहुत बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पदा है। पृथ्वी की ऊपरी सतह के कणों को ही मृदा कहा जाता है। मृदा को ही मिट्टी कहा जाता हैं यह पृथ्वी पर जीवन बनाये रखने में मदद करता है। किसानों के लिए मृदा का बहुत अधिक महत्व होता है, क्योंकि किसान इसी मृदा से प्रत्येक वर्ष स्वस्थ व अच्छी फसल की पैदावार पर आश्रित होते हैंद्य बहते हुए जल या वायु के प्रवाह द्वारा मृदा के पृथक्कीकरण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानान्तरण को ही मृदा अपरदन कहते हैं द्य मृदा अपरदन से लगभग 150 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल प्रभावित है जिसमें से 69 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल अपरदन की गंभीर स्थिति की श्रेणी में रखा गया हैद्य मृदा की ऊपरी सतह का प्रत्येक वर्ष अपरदन द्वारा लगभग 5334 मिलियन टन से भी अधिक क्षय हो रहाद्य देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 57% भाग मृदा ह्रास के विभिन्न प्रक्ररों से ग्रस्त हैद्य जिसका 45% जल अपरदन से तथा शेष 12% भाग वायु अपरदन से प्रभावित है

मृदा अपरदन :

मिट्टी के कणों का अपने मूल स्थान से हटने एवं दूसरे स्थान पर एकत्र होने की क्रिया को भू-क्षरण या मृदा अपरदन कहते हैं! भू-क्षरण के कारण नदी, नालों व समुद्रों में रेत व मिट्टी जमा होने कारण वे उथली हो रही हैं जिसके फलस्वरूप बाढ एवं पर्यावरण की समस्या दिन प्रतिदिन बढती जा रहीहै! भू-क्षरण के फलस्वरूप भूमि की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादन क्षमता घट जाती है जो देश की अर्थ व्यवस्था कमजोर करती है! आपको जानकर आश्चर्य होगा कि भारत में उपलब्ध कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग आधा क्षेत्रफल जल एवं वायु क्षरण से प्रभावित है! अतः इसे संरक्षित रखना अत्यावशयक है।

मृदा अपरदन के कारण:

अपरदन के कारणों को जाने बिना अपरदन की प्रकियाओं व इसके स्थानान्तरण की समस्या को समझना मुशिकल हैद्य मृदा अपरदन के कारणों को जैविक व अजैविक कारणों में बांटा जा सकता हैद्य किसी दी गई परिस्थति में एक यह दो कारण प्रभावी हो सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों कारण साथ-साथ प्रभावी होंद्य अजैविक कारणों में जल व वायु प्रधान घटक है जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक कारणों में प्रधान माना गया है जो मृदा अपरदन को त्वरित करता है

हमारे देश में मृदा अपरदन के मुख्य कारण निम्नलिखित है

- वृक्षों का अविवेकपूर्ण कटाव
- वानस्पतिक फैलाव का घटना
- वनों में आग लगना
- भूमि को बंजरध्खाली छोड़कर जल व वायु अपरदन के लिए प्रेरित करनाद्य
- मृदा अपरदन को त्वरित करने वाली फसलों को उगाना
- त्रुटिपूर्ण फसल चक्र अपनाना
- क्षेत्र ढलान की दिशा में कृषि कार्य करनाद्य
- सिंचाई की त्रुटिपूर्ण विधियाँ अपनाना

मृदा अपरदन की प्रक्रियां:

जब वर्षा जल की बूंदें अत्यधिक ऊंचाई से मृदा सतह पर गिरती है तो वे महीन मृदा कणों को मृदा पिंड से अलग कर देती हैद्य ये अलग हुए मृदा कण जल प्रवाह द्वारा फिसलते या लुढ़कते हुए झरनों, नालों या नदियों तक चले जाते हैंद्य अपरदन प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल होते हैंः

- मृदा कणों का ढीला होकर अलग होना (अपरदन)
- मृदा कणों का विभिन्न साधनों द्वारा अभिगमन (स्थानान्तरण)
- मृदा कणों का का जमाव (निपेक्षण)

मृदा अपरदन के प्रकार:

तमाम मानवीय कारणों से इतर कुछ प्राकृतिक कारण भी किसानों और कृषि क्षेत्र की परेशानी को बढ़ा देते हैं। दरअसल उपजाऊ जमीन के बड़े इलाकों पर हवा और पानी ध् जल के चलते मिट्टी का क्षरण होता है।

जल अपरदन के प्रकार

- वर्षा जल अपरदन
- परत अपरदन
- रिल अपरदन
- नाली अपरदन
- धारा तट अपरदन
- भूस्खलन अपरदन
- दर्रा निर्माण

वायु अपरदन :

मृदा सतह के कण तेज वायु तथा तूफान के साथ उड़कर अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित हो जाते हैं तथा वायु या तूफान की गति धीमी होने पर यह मृदा कण टीलों के रूप में जमा हो जाते हैं! इस प्रकार उर्वरक मृदा कृषि योग्य नहीं रहती, इस प्रकार का अपरदन वहाँ होता है जहाँ की भूमि मुख्यतः समतल, अनावृत्त, शुष्क एवं रेतीली तथा मृदा ढीली, शुष्क एवं बारीक दानेदार होती है। साथ ही वहाँ वर्षा की कमी तथा हवा की गति अधिक (यथा-रेगिस्तानी क्षेत्र) हो।

मृदा संरक्षण:

मिट्टी को किसी भी विनाशकारी प्रक्रिया तथा मृदा अपरदन से बचाने की प्रक्रिया को मृदा संरक्षण कहते हैं। मृदा संरक्षण का मुख्य उद्देश्य मिट्टी के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि करना एवं मिट्टी के कटाव को रोकना होता है। मृदा एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है जो विभिन्न प्रकार से जीव-जंतुओं का पालन-पोषण करती है। हमारे देश में भूमि कटाव की समस्या दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है. अतः जल ग्रहण व्यवस्था में भूमि संरक्षण प्रमुख कार्य होता हैद्य इसकी उपयोगिता पर्वतीय जल संग्रहं करने से और अधिक बढ़ जाती है. जल संग्रहण क्षेत्र सामान्यतया ढलानदर होते हैं. इससे ढाल का भूमि क्षरण पर प्रयत्क्ष प्रभाव होता है.ढाल अधिक होने से बहने वाले जल का वेग अधिक हो जाता है. गिरती हुई वस्तु के नियम के अनुसार वेग, खड़े ढाल के वर्गमूल के अनुसार बदलता है. यदि भूमि का ढाल चार गुणा बढ़ जाता है तो बहते हुए जल का वेग लगभग दो गुणा हो जाता है. बहते हुए जल का वेग दो गुणा हो जाने पर जल जिक क्षरण क्षमता चार गुणा अधिक हो जाती है.इस प्रकार जल परिवहन क्षमता 32 गुणा बढ़ जाती है. यही कारण है कि ढलानदार स्थानों में भूक्षरण अधिक होता है. मृदा एंव जल संरक्षण के लिए किये गए उपायों को मुख्यतया दो भागों में बांटा जा सकता है
(क) अभियन्त्रिकी उपाय (ख) शस्य -क्रियाएं एंव जैविक उपाय:

(क) अभियांत्रिकी उपाय:

मृदा सतह पर जल संरक्षण करने योग्य अभियान्त्रिकी संरचनाओं का निर्माण मृदा अपरदन को रोकने का एक प्रभावी विकल्प है जो अतिरिक्त वर्षा जल निकास में भी सक्षम होता हैद्य इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संरचनाएं सम्मिलित हैः

1.समोच्च बंध (कंटूर बंड): शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ अधिक रिसाव एवं जल प्रवेश की सम्भावना होती है वहां इस पद्धति का प्रयोग अत्यंत प्रभावी हो जाता है. इन क्षेत्रों में 6: ढाल होने तक समोच्च बंध प्रणाली को अपनाया जा सकता हैद्य समोच्च बंध खेत की ढाल के लम्बवत बनाया जाता है जो खेत में नमी संरक्षण करने में आशातीत भूमिका निभाता है.

2.श्रेणीबद्ध बंधः इस पद्धति के प्रयोग ऐसे क्षेत्रों जहाँ मिट्टी की जल रिसाव एवं जल प्रवेश क्षमता कम हो, वहाँ किया जाता है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में अप्रवाह जल की अधिक मात्रा होने से उसका सुरक्षित निकास आवश्यक हो जाता है. ज्ञातव्य है कि इस विधि का प्रमुख उद्देश्य खेत में नमी संरक्षण के बजाए खेत से अतिरिक्त अप्रवाह जल का सुरक्षित निकास है.

3.वृहत आधार वाली वेदिकाएं: अपेक्षाकृत कम ढाल वाले खेतों में नमी वा संरक्षण के उद्देश्य से इन वृहत आधार वाली वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है जो नमी संरक्षण के उद्देश्य के लिए बनाई जाती हैद्य ये वर्षा जल के अप्रवाह को कम करते हुए भूक्षरण को कम करते रहते हैं. वृहत आकर वाली वेदिकाओं के ऊपर फसल उगाई जा सकती है जबकि बंधों के ऊपर फसल उगाना सम्भव नहीं होता.

4.सीढ़ीनुमा वेदिकाएं: पर्वतीय क्षेत्रों में यह अधिक ढाल वाले खेतों में सामान्यतया सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाकर फसलें उगाई जाती है.उन क्षेत्रों में जहाँ मृदा की पर्याप्त गहराई उपलब्ध हो वहां 6 से 50: ढाल वाली भूमि पर सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाई जा सकती है.

(ख) शस्य -क्रियाएं एंव जैविक उपाय:

क्षरण, या मृदा का क्षरण, एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, लेकिन मानवीय गतिविधियों के कारण यह अधिक बढ़ जाता है। मृदा का क्षरण भूमि की उत्पादकता को घटाता है और जलवायु परिवर्तन पर भी असर डालता है। इस समस्या से निपटने के लिए शस्य-क्रियाएं (Agronomic Practices) और जैविक उपाय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शस्य-क्रियाएं

यह उन कृषि पद्धतियों का समूह है, जो मृदा के क्षरण को रोकने के लिए अपनाई जाती हैं। इनमें मुख्यतः निम्नलिखित उपाय शामिल हैं:

- **जमीन की पैदावार के अनुसार फसलें उगाना** : फसल चक्र (Crop Rotation) अपनाने से मृदा की उर्वरक क्षमता बनी रहती है और मृदा का संरचनात्मक क्षरण कम होता है। इसमें अलग-अलग प्रकार की फसलें बोने से मृदा में जैविक सामग्री बनी रहती है, जिससे मृदा का स्थायित्व बढ़ता है।
- **हवा को रोकने के लिए वृक्षारोप**: हवा के तेज झोंकों से मृदा का क्षरण होता है। इसके लिए खेतों के किनारे या खेतों के बीच में वृक्षारोपण किया जाता है, जिससे हवाओं की गति धीमी होती है और मृदा का क्षरण रोका जाता है।
- **मृदा की नमी बनाए रखना**: इस पद्धति में कम या बिना जुताई के कृषि क्रियाएं की जाती हैं, जिससे मृदा की सतह पर नमी बनी रहती है और मृदा का अवसादन (मतवेपवद) कम होता है।
- **सतही जल निकासी**: भूमि की ढलान के अनुरूप हल से जुताई करने से पानी की धारा फैल जाती है और मृदा का बहाव कम होता है।
- **कवर क्रॉप्स**:कवर क्रॉप्स या ढकने वाली फसलें (जैसे मूंग, मटर) बोने से मृदा की सतह पर एक परत बन जाती है, जो मृदा के क्षरण को रोकने में मदद करती है।

जैविक उपाय :
जैविक उपायों का उद्देश्य मृदा संरचना को सुधारना और उसका संरक्षण करना है। इनमें मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं:

- **वृक्षारोपण:** मृदा को संरक्षित करने के लिए वृक्षों और झाड़ियों का रोपण किया जाता है। इनके जड़ें मृदा में मजबूती से पकड़ बनाती हैं, जिससे मृदा का क्षरण कम होता है।

- **घास और वनस्पति:** प्राकृतिक या कृत्रिम घास और पौधों को उगाकर मृदा की सतह को ढका जाता है। ये पौधे मृदा को स्थिर रखते हैं और बारिश या हवा से होने वाले क्षरण को रोकते हैं।

- **वृक्षों का संरक्षण:** वन्य क्षेत्रों का संरक्षण और पुनर्निर्माण मृदा के क्षरण को रोकने में सहायक होता है, क्योंकि वनस्पतियां मृदा को स्थिर करने के लिए अपनी जड़ों का उपयोग करती हैं।

- **मृदा संरक्षण के लिए जैविक उर्वरक:** जैविक उर्वरकों (जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट) का उपयोग मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए किया जाता है, जिससे मृदा की स्थिरता में सुधार होता है।

निष्कर्ष:
मृदा का क्षरण एक गंभीर समस्या है, जिसे नियंत्रित करना आवश्यक है। शस्य-क्रियाओं और जैविक उपायों के संयोजन से यह समस्या कम की जा सकती है। इसके लिए कृषि पद्धतियों में बदलाव और पर्यावरणीय संरक्षण की दिशा में कदम उठाना आवश्यक है

१७

मृदा की घटती उर्वरता में टिकाऊ खेती का महत्त्व और उपाय

रोशन वाकोडे, सविता मीणा ,सुनील बी.एच.
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

मृदा उर्वरता :

मृदा उर्वरता कृषि पौधे के विकास को बनाए रखने के लिए मिट्टी की क्षमता को संदर्भित करती है, ''पौधों की वृद्धि तथा विकास के लिए मृदा को भौतिक, रसायनिक तथा जैविक शक्ति के योग को मृदा उर्वरता कहते हैं।'' पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए भौतिक रसायनिक तथा जैविक शक्ति तीनों का अपना-अपना महत्व है यदि एक भी शक्ति कम है,तो मृदा की उर्वरता यह स्वास्थ्य कम होगा। जैसे- मृदा में पौधों की वृद्धि के लिए पर्याप्त पोषक तत्व है, किंतु यदि जल निकास ठीक से नहीं है, तो जल निकास ना होने के कारण मृदा वायु में कमी होगी जिससे मृदा जीव की वृद्धि प्रभावित होगी उनके लिए प्रतिकूल स्थिति निर्मित होने से मृदा की उर्वरता या स्वास्थ्य कम होगा। सभी उत्पादक भूमि की उर्वरता या स्वास्थ्य अच्छी हो सकती है, किंतु सभी उर्वर भूमि की उत्पादकता अच्छी नहीं हो सकती।

मृदा की घटती उर्वरता:

मृदा खेती का आधार है और मृदा उर्वरता व मृदा उत्पादकता में आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। मृदा की उर्वरता घटती है तो मृदा के द्वारा फसल का उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी कम होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता हमेशा अच्छी रहे। फसलों के उत्पादन के परिणामस्वरुप जितना पोषक तत्व फसलें जमीन से उपयोग कर रही है उस मात्रा को हम किसी प्रकार पुनः धरती में लौटाने का का ताजा उ समें । ईमानदारी से प्रयास करें ऐसा न करने पर भूमि के पौषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। हम गत 4 दशकों से मृदा के साथ अनैतिक व्यवहार करते आये हैं जिससे फलस्वरुप शुरुआत में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, वहीं आज कई आवश्यक तत्वों की कमी हो जाने के कारण मृदा की सेहत एवं उर्वरता खराब हो गयी और उसकी फसलों की टिकाऊ खेती करने के लिए पौषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घट गयी। ईमानदारी से प्रयास करें ऐसा न करने पर भूमि के पौषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। हम गत 4 दशकों से मृदा के साथ अनैतिक व्यवहार करते आये हैं जिससे फलस्वरुप शुरुआत में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, वहीं आज कई आवश्यक तत्वों की कमी हो जाने के कारण मृदा की सेहत एवं उर्वरता खराब हो गयी और उसकी फसलों की टिकाऊ खेती करने के लिए पौषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घट गयी, तत्वों में एक भी कमी हो गयी तो फसल उत्पादन सार्थक रुप से घट जायेगा। पौधों को तीन आवश्यक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन हवा व जल से प्राप्त होते रहते हैं। और इनकी मृदा में अलग से डालने की जरुरत नहीं होती है अन्य 14 में से 6 पोषक तत्त्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, जिंक एवं आयरन की कमी मृदा में देखने को मिल रही है। देश के अनेक क्षेत्रों में इनकी अत्यधिक कमी हो चुकी है। शेष 8 पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर, क्लोरीन, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम एवं निकिल) की उपलब्धता की कोई खास समस्या नहीं पायी गयी। जब मृदा में आवश्यक पोषक तत्व की कमी होने से फसल में इन तत्वों की कमी के लक्षण प्रत्यक्ष रुप से बड़े पैमाने पर दिखाई देने लगते है और फसल उत्पादन में गिरावट अथवा ठहराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः हमें टिकाऊ खेती करने से पहले मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के निम्नलिखित कारणों को संक्षित रूप में जानने की जरूरत है।

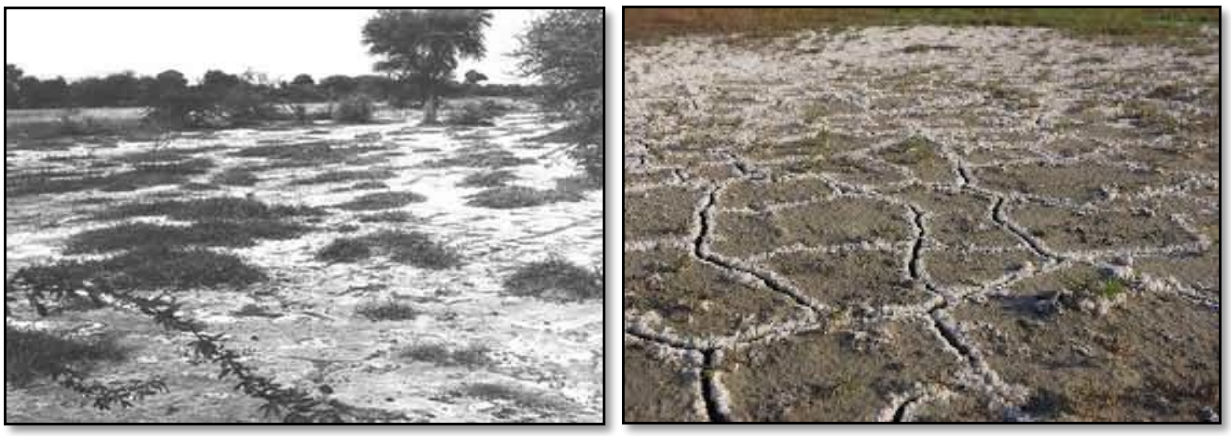

मृदा उर्वरता स्तर में दिन - प्रतिदिन गिरावट

मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के कारण:

- **पोषक तत्वों का दोहनः** हमारे देश में किसानों द्वारा फसल सघनीकरण से फसलें मृदा से पोषक तत्वों की बहुत बड़ी मात्रा का दोहन करती हैं जब किसान इनकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरको के द्वारा करता है लेकिन किसान बिना मृदा परीक्षण के ही उर्वरकों का अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग करता है जिसके परिणामस्वरुप मृदा की उर्वरता तथा उर्वरको-उपयोग क्षमता दिनों-दिन घट रही है।
- **मृदा में पोषक तत्वों का बिगड़ता संतुलनः** हमारे देश में प्रमुख पोषक तत्वों की स्थिति के बारे में जानकारी तालिका-1 में दी गई है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय कृषि 97 लाख टन नाइट्रोजऩफास्फोरस़ पोटेशियम की कमी के नकारात्मक संतुलन की मार झेल रही है। इस 97 लाख टन की पोषक तत्वों की मात्रा में 59 लाख टन हिस्सा केवल पोटेशियम का है। नाइट्रोजन की कमी 22 लाख टन और फास्फोरस की 19 लाख टन है। इस तालिका से साफ है कि जितनी मात्रा में नाइट्रोजन और । फास्फोरस का प्रयोग किया जाना चाहिए उतनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस की पूर्ति करने में भी असमर्थ रहे है। साथ हीं गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वें प्रयोग न के बराबर है। इन्हीं कारणों से ही मृदा में पौषक तत्वों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।
- **मृदा क्षरणः** मृदा की उपरी सतह में जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों से भरपूर होती है और अधिकांश पौधे पोषक तत्वों की आवश्यकता भी इस सतह से करते है। वनों की कटाई, अत्यधिक पशु-चराई एवं अवैज्ञानिकमृदा प्रबर्धन आदि से उपरी सतह से जल एवं वायु द्वारा मृदा क्षरण होने से जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों की एक बड़ी मात्रा का नुकसान हो जाता है। जिससे मृदा की उर्वरता में सार्थक कमी आ गयी।
- **मृदा की खराब भौतिक दशा:** धान की फसल में पड़लिगं करने से मृदा की संरचना बिगड़ती है जिससे मृदा उर्वरता एवं फसल उत्पादन में कमी आती है।
- **जैविक क्रियाशीलता में कमीः** वर्तमान में किये जा रहे एकल पद्धति फसल चक सघनी करण तथा फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से मृदा में जैव पदार्थों कमीअनुभव की जा रही है जिससे मृदा की गुणवत्ता में कमी आयी है। घटते जैव पदार्थों के कारण मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में भी कमी आ जाती है। ये सूक्ष्मजीव मृदा की सेहत में सुधार करते है
- **समस्याग्रस्त मुदाः** इन मृदाओं में अम्लीकरण,क्षारीयकरण और लवणीकरण के कारण विभन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की विषक्ता हो जाती है जबकि क्षारीय मृदा में इसकी कमी आ जाती है इसी प्रकार क्षारीय मृदा मेंफास्फोरस तत्व की उपलब्धता में कमी आ जाती है। साथ ही मृदा उर्वरता में गिरावट आती है।
- **कृषि विविधता का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव:** मौजूदा समय में की जा रही धान ओर गेहूँ की अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचलन के बाद भारतीय कृषि की विविधता गायब होती जा रही । कृषि-विविधता दो स्तरों पर कम हुई हैं एक तो मोटे अनाज, दालों और तिलहन के फसल-चक की जगह गेहूँ और धान के मोनोकल्चर आ गए है। दूसरा गेहूं और धान की फसलें

भी बहुत संकीर्ण आधार पर ली गई है जिससे पोषक तत्वो का दोहन बहुत अधिक मात्रा में होता है। हरित क्रान्ति की शुरुआत से आज तक मिट्टी की उर्वरता में निश्चित रुप से काफी कमी हुयी है।

टिकाऊ खेती :

टिकाऊ खेती या संधारणीय कृषि पादप एवं जानवरों के उत्पादन की समन्वित कृषि प्रणाली है जो पर्यावरणीय सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर की जाती है। आजकल, कृषि क्षेत्र में विकास और सुधार की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। पारंपरिक खेती में सीमित संसाधनों का प्रयोग और पर्यावरणीय प्रभावों के कारण खेती के तरीके को अधिक टिकाऊ बनाने की आवश्यकता महसूस हो रही है। टिकाऊ खेती का उद्देश्य भूमि, जल, और जैव विविधता के संरक्षण के साथ-साथ किसानों की आय में वृद्धि करना है। यह खेती न केवल पर्यावरणीय दृष्टिकोण से लाभकारी है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक रूप से भी किसानों के लिए फायदेमंद साबित होती है।

टिकाऊ खेती का महत्त्वः

- **पर्यावरणीय संरक्षणः** टिकाऊ खेती के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, मृदा, और वायु का संरक्षण किया जा सकता है। यह खेती जैव विविधता को बनाए रखने में मदद करती है और भूमि की उर्वरता को भी स्थिर बनाए रखती है।

- **जलवायु परिवर्तन के खिलाफ संघर्ष**: जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की अनिश्चितता बढ़ गई है। टिकाऊ खेती पद्धतियाँ जलवायु परिवर्तन के असर को कम करने में मदद करती हैं, जैसे कि मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखना और सूखा और बाढ़ जैसी घटनाओं से निपटना।

- **किसान की आय में वृद्धिः** टिकाऊ खेती से उत्पादन की लागत कम होती है और किसान जैविक उत्पादों को बेचकर अधिक लाभ कमा सकते हैं। यह उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाता है और उन्हें दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता प्राप्त होती है।

- **सामाजिक लाभः** टिकाऊ खेती से स्थानीय समुदायों को अधिक रोजगार के अवसर मिलते हैं। इस खेती पद्धति को अपनाने से ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि बढ़ती है और लोग अधिक स्वस्थ जीवन जीने में सक्षम होते हैं।

टिकाऊ खेती के उपायः

- **जैविक खेतीः** रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग कम करके जैविक उर्वरकों और प्राकृतिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इससे मृदा की गुणवत्ता बनी रहती है और पर्यावरण पर कम दुष्प्रभाव पड़ता है।
- **सिचाई के बेहतर तरीकेः** वर्षा जल संचयन, ड्रिप इरिगेशन, और पाइपलाइन सिचाई जैसे उपायों से पानी की बचत होती है। ये तरीके जलवायु संकट के समय में भी खेती को बनाए रखने में सहायक होते हैं।
- **मृदा का संरक्षणः** मृदा संरक्षण के लिए मल्चिंग, फसल चक्र और मिट्टी की आच्छादन तकनीक का उपयोग किया जाता है। इससे मृदा का कटाव रुकता है और उसकी उर्वरक क्षमता बनी रहती है।
- **प्राकृतिक कीट नियंत्रणः** कीटनाशकों के बजाय, प्राकृतिक शिकारियों का उपयोग करके कीटों की संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र को भी नुकसान नहीं पहुँचाता है।
- **नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोगः** सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और बायोगैस जैसी नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग करके खेतों में बिजली की आपूर्ति की जा सकती है। इससे खेती में लागत घटती है और पर्यावरण पर प्रभाव कम होता है।
- **फसल विविधताः** एक ही प्रकार की फसल उगाने के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलों को एक साथ उगाना चाहिए। यह मृदा के पोषक तत्वों को बेहतर तरीके से उपयोग करता है और रोगों से बचाव में मदद करता है।

निष्कर्ष:

टिकाऊ खेती केवल किसानों के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए फायदेमंद है। यह पर्यावरण को बचाने, जलवायु परिवर्तन से निपटने और किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि हम टिकाऊ खेती के उपायों को सही तरीके से अपनाते हैं, तो हम भविष्य में खाद्य सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और एक स्वस्थ पर्यावरण की दिशा में एक मजबूत कदम उठा सकते हैं।

१८

मृदा परीक्षणः उद्देश्य, महत्व, तकनीक एवं सावधानियां

अजीत कुमार मीना एव लक्ष्मणनारायण
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

मृदा परीक्षण :-

परिचयः

मृदा परीक्षण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मृदा में विभिन्न पोषक तत्वों की स्थिति का पता लगाया जाता है। यह खेती के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि मृदा की गुणवत्ता और पोषक तत्वों की उपलब्धता सीधे फसल की उपज को प्रभावित करती है। मृदा परीक्षण के द्वारा हम मृदा में मौजूद पोषक तत्वों की कमी और अधिकता का पता लगा सकते हैं और उचित उर्वरक का प्रयोग कर सकते हैं। मृदा परीक्षण कृषि के लिए एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि यह गुणवत्ता और पैदावार बढ़ाने के लिए आवश्यक सूचनाएं देता है। इस परीक्षण का उद्देश्य भूमि की उर्वरकता मापना तथा यह पता करना है कि उस भूमि में कौन से तत्वों की कमी है। मृदा परीक्षण भूमि में पहले से उपस्थित पोषक तत्वों का लाभ उठाते हुए फसल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उर्वरक की उचित और पर्याप्त मात्रा में खुराक का अनुप्रयोग सुनिश्चित करेगा। अक्सर कई पोषक तत्व जरूरत से ज्यादा डाल दिए जाते हैं, जिसके चलते मिट्टी में असंतुलन पैदा होता है और पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। मृदा परीक्षण यह पता लगाने में भी मददगार होता है कि समस्या किन क्षेत्रों में है और एक परिपूर्ण पोषण प्रबंधन योजना प्रदान करता है।

मृदा परिक्षण के उद्देश्य:

- मृदा की उर्वरा शक्ति की जांच करके फसल व किस्म विशेष के लिए पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा की सिफारिश करना तथा यह मार्गदर्शन करना कि उर्वरक व खाद का प्रयोग कब और कैसे करें।
- मृदा में लवणता, क्षारीयता तथा अमलीयता की समस्या की पहचान व जांच के आधार पर भूमि सुधारकों की मात्रा व प्रकार की सिफारिश कर भूमि को फिर से कृषि योग्य बनाने में योगदान करना
- बाग व पेड़ लगाने हेतु भूमि की अनुकूलता तय करने के लिए।
- किसी गांव, विकास खंड, तहसील, जिला, राज्य की मृदाओं की उर्वरा शक्ति को मानचित्र पर प्रदर्शित करना तथा उर्वरकों की आवश्यकता का पता लगाना। इस प्रकार की सूचना प्रदान कर उर्वरक निर्माण, वितरण एवं उपयोग में सहायता करना।

मृदा परीक्षण का महत्व एवं तकनीक:

- **पोषक तत्वों की पहचानः** मृदा परीक्षण से यह पता चलता है कि मृदा में कौन-कौन से पोषक तत्व (जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम आदि) मौजूद हैं और उनकी मात्रा कितनी है। इससे यह निर्धारित किया जा सकता है कि कौन से तत्व की कमी है और उन्हें सही मात्रा में कैसे प्रदान किया जाए।
- **उर्वरकों का सही उपयोगः** मृदा परीक्षण से उर्वरकों के सही अनुपात का निर्धारण होता है। यह उर्वरकों के अधिक या कम प्रयोग से होने वाली हानियों से बचाता है और उर्वरकों का अधिकतम लाभ प्राप्त करने में मदद करता है।
- **मृदा के स्वास्थ्य का संरक्षणः** मृदा परीक्षण से मृदा की अम्लता (चभ्), मृदा की जलधारण क्षमता, और अन्य गुणों की जानकारी मिलती है। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मृदा में कोई भी समस्या (जैसे अम्लीयता, लवणता, आदि) तो नहीं हो रही है, जो फसलों की वृद्धि को प्रभावित कर सकती है।
- **फसल की उपज में वृद्धिः** मृदा परीक्षण से किसानों को अपनी फसलों के लिए उपयुक्त उर्वरकों का चयन करने में मदद मिलती है, जिससे फसल की उपज में वृद्धि होती है और लागत में भी कमी आती है।
- **जलवायु परिवर्तन से बचावः** मृदा परीक्षण जलवायु परिवर्तन के असर को कम करने में भी सहायक है, क्योंकि यह मृदा की स्थिति के अनुसार उर्वरकों और सिंचाई की योजना बनाने में मदद करता है, जिससे फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से बच सकती हैं।

मिट्टी के रासायनिक परीक्षण के लिए पहली आवश्यक बात है - खेतों से मिट्टी के सही नमूने लेना। न केवल अलग-अलग खेतों की मृदा की आपस में भिन्नता हो सकती है, बल्कि एक खेत में अलग-अलग स्थानों की मृदा में भी भिन्नता हो सकती है। परीक्षण के लिये खेत में मृदा का नमूना सही होना चाहिए।
मृदा का गलत नमूना होने से परिणाम भी गलत मिलेंगे। खेत की उर्वरा शक्ति की जानकारी के लिये ध्यान योग्य बात है कि परीक्षण के लिये मिट्टी का जो नमूना लिया गया है, वह आपके खेत के हर हिस्से का प्रतिनिधित्व करता हो।

मिट्टी के नमूना एकत्रित करने की विधि:

मृदा परिक्षण के लिए सबसे पहले मृदा का नमूना लिया जाता है। इसके लिए जरूरी है की मृदा का नमूना पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करे। यदि मृदा का नमूना ठीक डंग से नहीं लिया गया हो और वह मृदा का सही प्रतिनिधित्व न कर रहा हो तो भले ही मृदा परिक्षण में कितनी ही सावधानियां क्यों न बरती जाएं, उसकी सिफारिश सही नहीं हो सकती। अतः खेत की मृदा का नमूना पूरी सावधानी से लेना चाहिए।

- जिस जमीन का नमूना लेना हो उस क्षेत्र पर 10-15 जगहों पर निशान लगा लें।
- चुनी गई जगह की उपरी सतह पर यदि कूडा करकट या घास इत्यादी हो तो उसे हटा दें।
- खुरपी या फावडे से 15 सेमी गहरा गड्ढा बनाएं। इसके एक तरफ से 2-3 सेमी मोटी परत उपर से नीचे तक उतार कर साफ बाल्टी या ट्रे में डाल दें। इसी प्रकार शेष चुनी गई 10-15 जगहों से भी उप नमूने इकट्ठा कर लें।

- अब पूरी मृदा को अच्छी तरह हाथ से मिला लें तथा साफ कपडे या टब में डालकर डेर बनालें। अंगुली से इस डेर को चार बराबर भागों में बांट दें। आमने सामने के दो बराबर भागों को वापिस अच्छी तरह से मिला लें। यह प्रक्रिया तब तक दोहराएं जब तक लगभग आधा किलो मृदा न रह जाए। इस प्रकार से एकत्र किया गया नमूना पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करेगा।
- नमूने को साफ प्लास्टिक की थैली में डाल दें। अगर मृदा गीली हो तो इसे छाया में सूखा लें। इस नमूने के साथ नमूना सूचना पत्रक जिसमें किसान का नाम व पूरा पता, खेत की पहचान, नमूना लेने कि तिथि, जमीन का ढलान, सिंचाई का उपलब्ध स्रोत, पानी निकास, अगली ली जाने वाली फसल का नाम, पिछले तीन साल की फसलों का ब्यौरा व कोई अन्य समस्या आदि का विवरण, कपड़े की थैली में रखकर इसका मुँह बांधकर कृषि विकास प्रयोगशाला में परिक्षण हेतु भेज देवें।

सावधानियां

- मृदा का नमूना इस तरह से लेना चाहिए जिससे वह पूरे खेत की मृदा का प्रतिनिधित्व करें। जब एक ही खेत में फसल की बडवार में या जमीन के गडन में, रंग व डलान में अंतर हो या फसल अलग-अलग बोयी जानी हो या प्रबंध में अंतर हो तो हर भाग से अलग नमूने लेने चाहिए। यदि उपरोक्त सभी स्थिति खेत में एक जैसी हो तब एक ही नमूना लिया जा सकता है। ध्यान रहे कि एक नमूना ज्यादा से ज्यादा दो हैक्टेयर से लिया जा सकता है।
- मृदा का नमूना खाद के डेर, पेडों, मेडों, डलानों व रास्तों के पास से तथा ऐसी जगहों से जो खेत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है न लें।
- मृदा के नमूने को दूषित न होने दें। इसके लिए साफ औजारों से नमूना एकत्र करें तथा साफ थैली में डालें। अेसी थैली काम में न लाएं जो खाद एवं अन्य रसायनों के लिए प्रयोग में लाई गई हो।
- मृदा का नमूना बुआई से लगभग एक माह पूर्व कृषि विकास प्रयोगशाला में भेज दें जिससे समय पर मृदा की जांच रिर्पोट मिल जाएं एवं उसके अनुसार उर्वरक एवं सुधारकों का उपयोग किया जा सके।
- यदि खडी फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई दें और मृदा का नमूना लेना हो तो फसल की कतारों के बीच से नमूना लेना चाहिए।
- जिस खेत मे कंपोस्ट, खाद, चूना, जिप्सम तथा अन्य कोई भूमि सुधारक तत्काल डाला गया हो तो उस खेत से नमूना न लें।
- मृदा के नमूने के साथ सूचना पत्र अवश्य डालें जिस पर साफ अक्षरों में नमूना संबधित सूचना एवं किसान का पूरा पता लिखा हो।

सूक्ष्म तत्वों की जांच के लिए नमूना लेते समय अतिरिक्त सावधानियां:

धातु से बने औजारों या बर्तनों को काम में नहीं लाएं क्योंकि इनमें लौह, जस्ता व तांबा होता है। जहां तक संभव हो, प्लास्टिक या लकडी के औजार काम में लें।

यदि मृदा खोदने के लिए फावडा या खुरपी ही काम में लेनी पडे तो वे साफ होनी चाहिए। इसके लिए गडडा बना लें व एक तरफ की परत लकडी के चैडे फट्टे या प्लास्टिक की फट्टी से खुरचकर मृदा बाहर निकाल दें। फिर इस प्लास्टिक या लकडी के फट्टे से 2-3 सेमी मोटी परत उपर से नीचे तक 15 सेमी और पूर्व बताई गई विधि के अनुसार 10-15 जगहों से मृदा एकत्र करके मृदा का नमूना तैयार कर सूचना पत्रक सहित कृषि विकास प्रयोगशाला में भेज दें।

मृदा परीक्षण के निष्कर्ष:

- **सही उर्वरकों का चयनः** मृदा परीक्षण के परिणामों के आधार पर, किसान सही प्रकार के उर्वरकों का चयन कर सकते हैं, जिससे भूमि की उर्वरक क्षमता बनी रहती है और अधिक उपज प्राप्त होती है।

- **पोषक तत्वों की कमीः** मृदा परीक्षण यह संकेत करता है कि मृदा में किस पोषक तत्व की कमी है, जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, या पोटैशियम। इस जानकारी के आधार पर किसान उपयुक्त उर्वरक का उपयोग कर सकते हैं।

- **मृदा की अम्लताः** मृदा का चभ् स्तर यह दर्शाता है कि मृदा अम्लीय, क्षारीय या तटस्थ है। यदि मृदा अधिक अम्लीय या अधिक क्षारीय है, तो उसे उचित उपचार की आवश्यकता हो सकती है।

- **जल धारण क्षमताः** मृदा परीक्षण से यह जानकारी मिलती है कि मृदा में पानी धारण करने की क्षमता कितनी है, जिससे जल आपूर्ति की योजना बनाई जा सकती है।

निष्कर्ष :

मृदा परीक्षण कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम है जो फसल उत्पादन में सुधार और मृदा के स्वास्थ्य के संरक्षण में मदद करता है। यह किसान को सही उर्वरक और सिंचाई विधियों का चयन करने में सहायता प्रदान करता है, जिससे फसल की उपज में वृद्धि होती है और लागत में कमी आती है। मृदा परीक्षण से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मृदा का उपयोग पूरी तरह से किया जा रहा है और पर्यावरण पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इसलिए, मृदा परीक्षण को एक नियमित प्रक्रिया के रूप में अपनाना चाहिए ताकि कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके और मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनी रहे

१९

सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग): प्रकार , उपयोग एवं कृषि में महत्व

अजीत कुमार मीना एव निर्मल कुमार,
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) :

प्रोफेसर पिशरोथ रामा पिशरोटी को भारतीय सुदूर संवेदन का जनक माना जाता है। सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी वस्तु , जगह या किसी घटना के संपर्क में आये बिना ही इनकी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाती है उस प्रक्रिया को सुदूर संवेदन कहते है। सुदूर संवेदन का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु के सीधे संपर्क में आये बिना उसके बारे में आँकड़े संग्रह करना। सुदूर संवेदन एक दूरी पर (आमतौर पर उपग्रह या विमान से) परावर्तित और उत्सर्जित विकिरण को मापकर किसी क्षेत्र की भौतिक विशेषताओं का पता लगाने और निगरानी करने की प्रक्रिया है । आधुनिक सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) का अर्थ परिलक्षित या उत्सर्जित विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का उपयोग कर पृथ्वी और पानी की सतहों की जानकारी प्राप्त करना है। रिमोट सेंसिंग इस सिद्धांत पर आधारित है कि विद्युत चुम्बकीय विकिरण (प्रकाश) और एक वस्तु के बीच हमेशा परस्पर क्रिया होती है। वस्तुएं विकिरण को अवशोषित, प्रतिबिंबित, बिखराव, संचारित या अपवर्तित करती हैं।

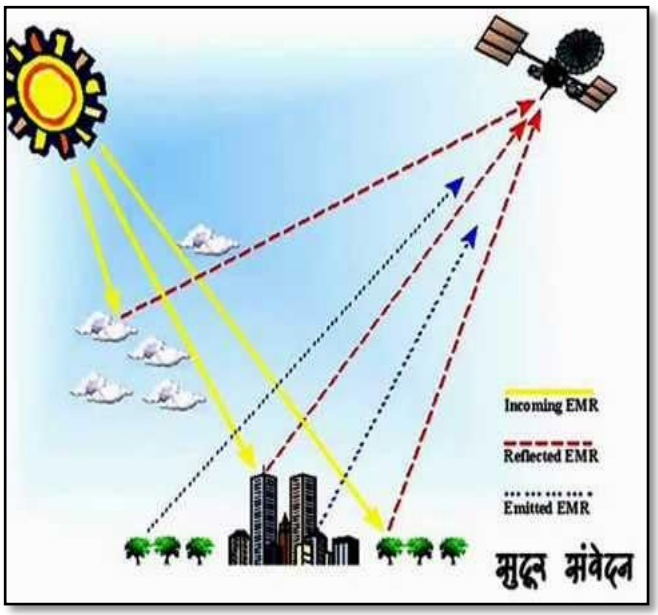

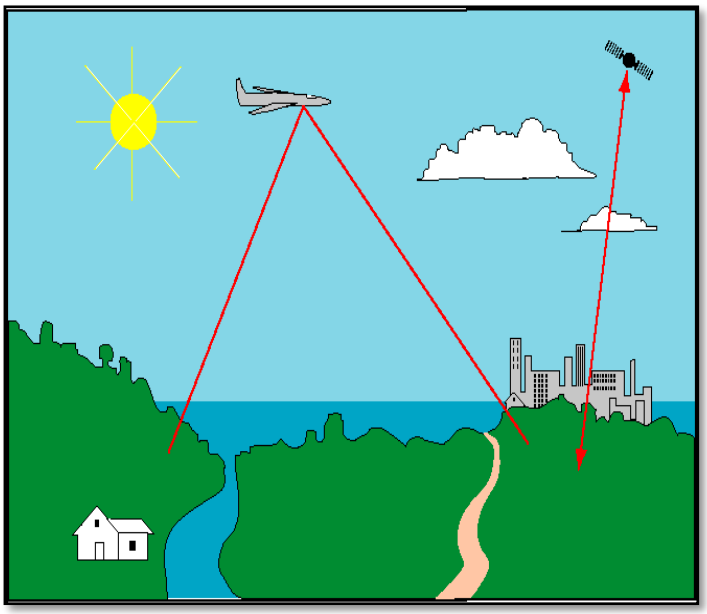

संयुक्त राष्ट्र (95वें पूर्ण बैठक, 3 दिसम्बर, 1986) के अनुसार, रिमोट सेंसिंग का अर्थ पृथ्वी पर विध्यमान वस्तुओं से उत्सर्जित, परिलक्षित या विसरित विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उपयोग करके अंतरिक्ष से पृथ्वी की सतह की जानकारी प्राप्त करना है। इसका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, भूमि के उपयोग और पर्यावरण के संरक्षण में सुधार लाना है।

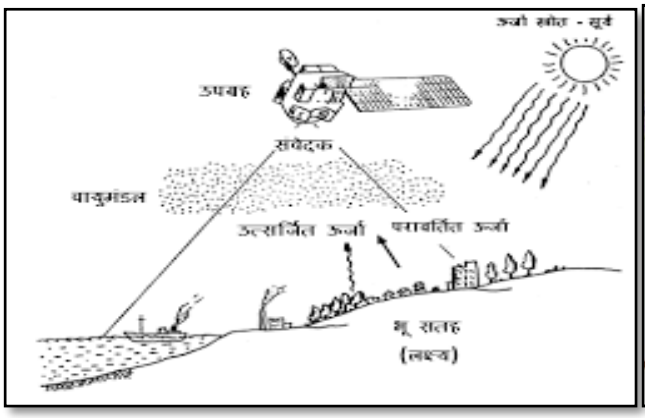

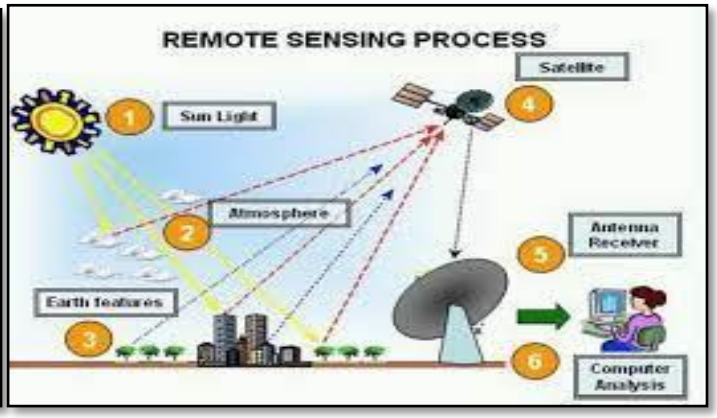

सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) के प्रकारः

सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) दो प्रकार का होता है:

(1) सक्रिय सुदूर संवेदन (2) निष्क्रिय सुदूर संवेदन

(1) **सक्रिय सुदूर संवेदन**: वह संवेदी उपकरण जो स्वयं विद्युत चुंबकीय तरंगे उत्पन्न करते हैं और जिस जगह या वस्तु की जानकारी लेनी है उसकी तरफ उन तरंगों को भेजते हैं और यह तरंगे जब वस्तु से टकराकर आती है तो इन परावर्तित तरंगों के आधार पर आंकड़ों का पता लगाते हैं ये प्राकृतिक विकिरण के उपयोग के साथ साथ स्वयं ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं और परिलक्षित या परावर्तित ऊर्जा का संवेदन करते हैं। सक्रिय सुदूर संवेदक हर स्थिति में कार्यशील रहते हैं, इसके कारण इन्हें सक्रिय सुदूर संवेदक कहते हैं ।

(2) **निष्क्रिय सुदूर संवेदन**: निष्क्रिय सुदूर संवेदक स्वयं ऊर्जा का उत्सर्जन नहीं करते, वे सुदूर संवेदन के लिए वाह्य श्रोतों से प्राप्त ऊर्जा पर निर्भर करते हैं। निष्क्रिय सुदूर संवेदक प्राकृतिक विकिरण की उपस्थिति में ही कार्य करने में सक्षम होते हैं इसके कारण इन्हें निष्क्रिय सुदूर संवेदक कहते हैं । इस प्रकार के सूदूर संवेदी उपकरण में सूर्य का प्रकाश वस्तु से परावर्तित होकर इस उपकरण के पास आता है और इस परावर्तित सूर्य के प्रकाश के आधार पर आकंड़ो का पता लगाया जाता है या जानकारी प्राप्त की जाती है।

सुदूर संवेदन की प्रक्रिया कई चरणों में संपन्न होती है, जो निम्न प्रकार से हैं

- उर्जा के श्रोत से ऊर्जा का उत्सर्जन
- वस्तु से परावर्तन या उत्सर्जन
- सुदूर संवेदक द्वारा उर्जा संवेदन या संग्रहण
- रिमोट सेंसिंग डिवाइस द्वारा ऊर्जा का पुनःपरावर्तन
- पुनः परावर्तित ऊर्जा का डिजिटल फार्म में परिवर्तन एवं उपयोग

रिमोट सेंसिंग के कार्य:-

- सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) के कृषि में महत्व एक शहर के विकास और कई वर्षों या यहां तक कि दशकों में कृषि भूमि या जंगलों में परिवर्तनों को ट्रैक करना है.

- बादलों को ट्रैक करने या मौसम की भविष्यवाणी करने में मदद करने के लिए बादलों को ट्रैक करना, और धूल के तूफानों को देखने में मदद करना।

- भारत में अक्सर ओले पड़ने और भारी बारिश के कारण फसलों को बहुत नुकसान होता है और इसका समय पर सटीक मूल्यांकन न हो पाने से किसानों को उचित मुआवजा नहीं मिल पाता है। नई दिल्ली स्थित महालनोबिस राष्ट्रीय फसल पूर्वानुमान केंद्र के अध्ययनकर्ताओं ने फसलों के नुकसान के आकलन से जुड़ी इस मुश्किल को दूर करने के लिए अब रिमोट सेंसिंग का उपयोग करके एक नया रास्ता दिखाया है।

- बड़े जंगल की आग को अंतरिक्ष से मैप किया जा सकता है, जिससे रेंजरों को जमीन से कहीं ज्यादा बड़ा क्षेत्र देखने की अनुमति मिलती है।

- उपग्रहों और विमानों पर कैमरे पृथ्वी की सतह पर बड़े क्षेत्रों की छवियां लेते हैं, जिससे हम जमीन पर खड़े होकर जितना देख सकते है उससे कई अधिक देखने की इजाजत देते है।

- रिमोट सेंसिंग की तकनीक बहुत बड़े क्षेत्र के कवरेज की क्षमता प्रदान करता है। साथ ही यह दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों की सूचना (डेटा) भी सुगमता से प्रदान करता है। इस प्रकार यह विभिन्न विषयों से संबन्धित विस्तृत क्षेत्रीय सर्वेक्षण की क्षमता प्रदान करता है। इससे धरातल के बड़े क्षेत्र की विशेषताओं की आसानी से पहचान संभव होती है।

- रिमोट सेंसिंग द्वारा सूचना (डेटा) का आसान और तेज संग्रह किया जाता है। इससे प्राप्त सूचना (डेटा) को कंप्यूटर के माध्यम से आसानी से विश्लेषण किया जा सकता है। इससे मानचित्रों का उत्पादन शीघ्रता पूर्वक किया जा सकता है और प्राप्त सूचना (डेटा) को शीघ्रता पूर्वक विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।
- रिमोट सेंसिंग एक ही स्थान के पुनः अवलोकन की क्षमता प्रदान करता है। किसी भी क्षेत्र की निश्चित समयावधि में इमेज प्राप्त करने से परिदृश्य में किसी भी प्रकार के सामयिक परिवर्तन (मानवजनित या प्राकृतिक) का अध्ययन संभव होता है। साथ ही इससे भू आवरण और भूमि उपयोग आदि परिवर्तनशील विषयों पर सूचना (डेटा) एकत्र करना संभव होता है

- रिमोट सेंसिंग एक भेदभाव रहित (Non Discriminator) तकनीक है। इसके द्वारा विभिन्न धरातलीय तत्वों की विभिन्न विशेषताओं से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। इमेज में धरातल की सभी सूचनाएँ एक साथ संकलित होती हैं। इमेज से प्राप्त सूचना (डेटा) की कोई सीमा नहीं होती है। रिमोट सेंसिंग से मल्टीस्पेक्ट्रल इमेज (अलग-अलग बैंड की छवियां) प्राप्त की जाती है जिससे किसी क्षेत्र के विवरण को समुचित और सटीक परिभाषित करना संभव होता है। इससे विविध विषयों का पता लगाना आसान हो जाता है। इसके माध्यम से प्राप्त छवि का उपयोग विभिन्न अनुप्रयोगों और उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।

- रिमोट सेंसिंग द्वारा सूचना (डेटा) का आसान और तेज संग्रह किया जाता है। इससे प्राप्त सूचना (डेटा) को कंप्यूटर के माध्यम से आसानी से विश्लेषण किया जा सकता है। इससे मानचित्रों का उत्पादन शीघ्रता पूर्वक किया जा सकता है और प्राप्त सूचना (डेटा) को शीघ्रता पूर्वक विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

- परंपरागत भूमि सर्वेक्षण की विधियों की तुलना में रिमोट सेंसिंग एक अपेक्षाकृत सस्ता और सुगम तरीका है। यह तकनीक सर्वेक्षकों की एक बड़ी टीम को नियुक्त करने की तुलना में अपेक्षाकृत सस्ती है।

- रिमोट सेंसिंग के माध्यम से एकत्र किए गए सूचना (डेटा) का प्रयोगशाला में विश्लेषण किया जाता है जो इसे सस्ता और तेज बनाता है। अन्तरिक्ष आधारित सूचना (डेटा) से योजना बनाना और उसका क्रियान्वयन करना आसान और तेज हो

२०

महाराष्ट्र: मिट्टी में फल उत्पादन के अवसर

अभय गेडाम, स्नेहलता चवरे,राहुल कोल्हे, प्रतिक बोरकर एम.एस. रघुवंशी,रितिक बिस्वास,
आर. के नैताम एवं अभय शिराले
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

महाराष्ट्र फल उत्पादन में अग्रणी राज्य है, जहाँ करीब १२ ८९. लाख हेक्टेयर भूमि पर फलों की खेती की जाती है। यहाँ मुख्यतः गहरी काली मिट्टी (कॉटन), लाल मिट्टी (लेटेराइट), उपजाऊ नदीअवसादी मिट्टी (आलुवियल), इत्यादि पाई जाती हैं। हर मिट्टी की अपनी विशेषताएँ होती हैं, जो कुछ फल फसलों के लिए बहुत अनुकूल होती हैं जबकि अन्य के लिए कम। नीचे भूभाग के - प्रमुख मिट्टी प्रकारों के अनुसार फल फसलों की सम्भावनाओं को विस्तार से बताया गया है, ताकि किसान सही मिट्टी के हिसाब से उपयुक्त फल की बागवानी कर सकें।

फलों की फसलों से बेहतर पैदावार और अच्छी वृद्धि के लिए, उपलब्ध मिट्टी अनुकूल होनी चाहिए। मिटटी की सही पहचान करने के लिए बिंदु निम्न है

गहरी काली मिट्टी (भारी काली): विदर्भ और मराठवाड़ा में पाई जाती है। यह गहरी और उपजाऊ होती है, लेकिन चिपचिपी होती है। गीली होने पर फूलती है और सूखने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं। इस मिटटी में जलभराव की समस्या उत्पन्न होती है, जिससे जड़ें सांस नहीं ले पातीं।

मध्यम काली / दोमट मिट्टी (मध्यम काली): जलगांव और नासिक के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। इसमें पानी की निकासी अच्छी होती है लेकिन नमी भी बनी रहती है। यह मिटटी अधिकांश फलों की फसलो के लिए उपयुक्त है।

लाल लेटराइट मिट्टी : कोंकण (रत्नागिरी, सिंधुदुर्ग) में पाई जाती है। यह लाल, अम्लीय और अक्सर पथरीली होती है। जुताई के दौरान इस मिटटी में खाद और पत्थर तोड़ने की आवश्यकता होती है।

हल्की / बजरी वाली मिट्टी (मुरुम/मालरान): सोलापूर और सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पाई जाती है। यह उथली होती है और पानी बहुत तेजी से सोख लेती है। सिंचन सुविधाये उपलब्ध हो तो यह मिटटी अनार और ड्रैगन फ्रूट के लिए उपयुक्त है |

१. विदर्भ: (संतरा और नींबू वर्गीय फसलें)

नागपुर और अमरावती में कई किसान "सिट्रस डिक्लाइन" (बागों का सूखना) की बड़ी समस्या है । मानसून के दौरान गहरी काली मिट्टी बहुत अधिक पानी रोक कर रखती है इस कारण "सिट्रस डिक्लाइन" की समस्या होती है संतरे | की जड़े पानी में डूबी रहें, तो उन पर *फाइटोफ्थोरा* (Phytophthora) फंगस का संक्रमण हो जाता है और जड़ें सड़ने लगती हैं।

समाधान

- *फाइटोफ्थोरा* के समाधान के लिए उठी हुई क्यारियों पर पौधे लगाने चाहिए। यह तने और मुख्य जड़ों को जमा हुए पानी से ऊपर रखता है।
- पारंपरिक "रफ लेमन" (जंभेरी) रूटस्टॉक भारी मिट्टी में आसानी से सड़ जाता है। इसके बजाय रंगपुर लाइम या एलेमो रूटस्टॉक का उपयोग करें, जो भारी मिट्टी को बेहतर ढंग से सहन कर सकते हैं।
- यदि आपकी मिट्टी में सफेद गांठें (चूना/चुनखड़ी) हैं, तो आपके पेड़ पीले (Chlorosis) पड़ सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि चूना लोहे और जस्ता को पकड़े रखता है। नियमित समय पर मिटटी में जिंक सल्फेट और फेरस सल्फेट का छिड़काव करने से यह समस्या सुलझाई जा सकती है|

उठी हुई क्यारियों पर नागपुरी संतरा

२ मराठवाडा (जलगांव) (केला उत्पादन)

केले को भारी मात्रा में खाद एवं पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन ज्यादा पानी जमा होने से फसल ख़राब हो सकती है।

मिट्टी का चुनाव

- केले के फसल के लिए भरी काली मिटटी से बचे।
- केले की फसल के लिए मुरुम की परत के ऊपर स्थित "मध्यम काली" मिट्टी (१ से ३ फीट गहरी) सबसे अच्छी होती है। यह अतिरिक्त पानी का निकास अच्छा करती है|

केले की फसल को भारी सिंचाई की आवश्यकता होती है, इसलिए खराब निकासी वाली मिट्टी में सतह पर लवण जमा हो सकते हैं, जिससे पत्तियां जल सकती हैं। जड़ों से लवण को दूर रखने और पानी बचाने के लिए थिब्बक सिंचाई (ड्रिप) का उपयोग

अनिवार्य है।

- केले के अवशेषों का उपयोग मल्च (आच्छादन) के रूप में करें। यह गर्मियों के दौरान काली मिट्टी को फटने और केले की जड़ों को टूटने से रोकता है।

अति लावन से प्रभावित केले की बाग

२. कोंकण: (आम और काजू)

कोंकण में लाल मिटटी पाई जाती है यह अम्लीय | होती है और अक्सर कठोर चट्टान के ऊपर होती है।

हापुस आम (अल्फ़ान्सो)

- लाल मिट्टी की अम्लता हापुस आम को उसकी विशेष सुगंध देता है। मिट्टी को मीठा करने के लिए बहुत अधिक चूना न डालें जब तक कि पी एच बहुत कम (५.० से नीचे) न हो।

काजू

- बड़ी ढलानों और पथरीली वाली जमीनों में काजू की फसल अच्छी होती है।
- लाल मिट्टी में बारिश के साथ पोषक तत्व आसानी से बह जाते हैं। पीली पत्ती के धब्बों और फल गिरने से रोकने के लिए "कोंकण मल्टी-न्यूट्रिएंट" मिश्रण (जिसमें जिंक, बोरॉन, कॉपर होता है) का छिड़काव करना चाहिये |

ढलानों और पथरीली जमीनों में काजू की फसल

३. पश्चिम महाराष्ट्र (सांगली, सोलापुर और नाशिक)

अनार उत्पादन

अनार गहरी काली मिट्टी की तुलना में हल्की, उथली मिट्टी (मुरुम) वाली मिटटी बेहतर है और उसमें बीमारी कम लगती है।

- भारी काली मिट्टी में, जमीन के पास नमी बनी रहती है, जिससे तेल्या" रोग" और होता "विल्ट" है। हल्की, बजरी वाली मिट्टी में पानी तेजी से निकल जाता है, जिससे बाग सूखा और स्वस्थ रहता है।
- हल्की मिट्टी में उगाए गए फलों में हल्का तनाव होने के कारण बेहतर रंग और मिठास आती है।
- भारी मिट्टी में अनार की खेती करने के लिए रोपण गड्ढे में ५०% नदी की रेत या मुरुम मिलाएं और विल्ट से लड़ने के लिए मिट्टी को ट्राइकोडर्मा जैसे जैविक घटक से उपचारित करें।

माध्यम काली दोमट मिट्टीअनार :

अंगूर (नासिक/सांगली)

- अंगूर की फसल हलकी दोमट रेतीली जल निकास वाली मिटटी में बेहतर होती है। अंगूर मिट्टी और पानी में नमक (सोडियम) के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं।
- पानी और मिटटी में नमक की मात्रा ज्यादा होने पर डोगरिज रूटस्टॉक पर ग्राफ्ट किये गये बेल का उपयोग करना चाहिए । यह एक फिल्टर के रूप में कार्य करता है, जो नमक को पत्तियों में प्रवेश करने से रोकता है।
- अंगूर को उदासीन मिट्टी (पी एच ६.५ – ७.५) चाहिए। यदि पी एच 8.0 से ऊपर है, तो इसे कम करने के लिए सल्फर या जिप्सम और अम्लीय उर्वरकों का उपयोग करे|

हलकी काली मिट्टी: अंगूर

४. मिट्टी के लिए नए अवसर

जमीन पथरीली, उथली है या पानी की कमी है, तो पारंपरिक फसलें से नुकसान हो सकता है।

- ड्रैगन फ्रूट की फसल के लिए पथरीली, बंजर भूमि उपयुक्त है । इसे बहुत कम पानी और सहारे के लिए खंभों की आवश्यकता होती है। यह अहमदनगर और सोलापुर के सूखे, पथरीले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।
- **सीताफल:** नई "सुपर गोल्डन" किस्में बजरी वाली, उथली मिट्टी पर बहुत अच्छी तरह बढ़ती हैं जहाँ अन्य फसलें विफल हो जाती हैं। यह सूखे क्षेत्रों के लिए कम लागत वाली, उच्च मुनाफे वाली फसल है।

मिट्टी के आधार पर उपयुक्त फसले:

मिट्टी	विशेषताएँ	उपयुक्त फसलें
काली मिट्टी	गहरी, नमी-रोकी रखने वाली, क्षारीय	संतरा/मौसंबी, आम, सपोटा, अमरूद, केला, पपीता, अनार
लाल मिट्टी	उत्तम जलनिकासी, लोहे-समृद्ध, अम्लीय	केला, आम, अमरूद, पपीता, जामुन
पश्मी (लेटेराइट)	खुरदरी, कम उर्वर, सूखा सहिष्णु	आम, सीताफल, अमरूद, आवला, अंजीर, बेर, जामुन
आलुवियल मिट्टी	भूरे-भरे दोमट, नमी-रोकने वाले, उपजाऊ	केला, पपीता, अमरूद

निष्कर्ष:

- मिट्टी की ताकत (उपजाऊपन) और कमजोरी (जल भराव या पथरीलापन) के अनुसार ही फलो की फसल लगानी चाहिये।
- भारी काली मिट्टी उपजाऊ है, लेकिन इसमें 'जल निकासी' की व्यवस्था न होना बागों के सूखने का सबसे बड़ा कारण है। यहाँ संतरा या केला लगाते समय विशेष सावधानी बरतें।
- जिसे हम 'बंजर' या 'हलकी' जमीन कहते हैं (माळरान), वह अनार, सीताफल और ड्रैगन फ्रूट के लिए काली मिट्टी से भी ज्यादा फायदेमंद साबित हो सकती है।
- सही रूटस्टॉक और मिट्टी परीक्षण (जैसे संतरे के लिए रंगपुर लाइम) का उपयोग करके आप कम लागत में ज्यादा मुनाफा कमा सकते हैं।
- प्रकृति से लड़ने के बजाय, अपनी मिट्टी के गुणदोष के साथ तालमेल बिठाकर खेती करें-, सफलता निश्चित मिलेगी।

२१

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) के साथ कृषि क्षमता की तलाश

स्नेहलता चवरे,अभय गेडाम, राहुल कोल्हे, कल्पना घटे, अनंतराज जाधव, प्रतिक बोरकर
निहाल ऊके, एम.एस. रघुवंशी एवं रितिक बिस्वास
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि न केवल आजीविका का प्रमुख स्रोत है बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है। बदलते जलवायु परिदृश्य, अनियमित वर्षा, भूजल का तेजी से घटता स्तर और पारंपरिक सिंचाई प्रणालियों की सीमाएँ आज किसानों के सामने बड़ी चुनौती बनकर खड़ी हैं। इन चुनौतियों का समाधान खोजने और कृषि उत्पादन को स्थायी रूप से बढ़ाने के उद्देश्य से प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) की शुरुआत की गई।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) भारत सरकार द्वारा प्रारंभ की गई एक महत्त्वपूर्ण योजना है, जिसका मुख्य उद्देश्य सिंचाई सुविधाओं का विस्तार और सुधार करके कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है। वर्ष 2015 में शुरू की गई इस योजना का लक्ष्य कृषि क्षेत्र में जल सुरक्षा की समस्या को दूर करना है, ताकि प्रत्येक किसान के खेत तक सिंचाई साधन उपलब्ध हो सके। सरकार ने इस कार्यक्रम के लिए पाँच वर्षों में कुल ₹50,000 करोड़ का बजट निर्धारित किया है, जिसके माध्यम से लगभग 28.5 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि को सुनिश्चित सिंचाई के दायरे में लाने का लक्ष्य रखा गया है। यह प्रयास न केवल फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि करेगा, बल्कि देशभर के करोड़ों किसानों की आर्थिक स्थिरता और आय में भी महत्वपूर्ण सुधार लाएगा।

पीएमकेएसवाई योजना का मुख्य उद्देश्य "हर खेत तक पानी" पहुँचाना, जल संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग बढ़ाना और अधिक फसल उत्पादन के लिए कुशल सिंचाई तकनीकों को अपनाना है। यह योजना सूक्ष्म सिंचाई, जल-संरक्षण, जल-स्रोत विकास, खेत तालाब निर्माण, नहरों के पुनर्वास, वर्षा जल संचयन और भूमि संरक्षण जैसी गतिविधियों को बढ़ावा देती है। इस योजना के माध्यम से किसान न केवल सिंचाई सुविधाओं में सुधार कर रहे हैं, बल्कि खेतों की उत्पादकता भी बढ़ा रहे हैं। आधुनिक तकनीकों जैसे– ड्रिप, स्प्रिंकलर और प्रिसिजन इरिगेशन के उपयोग से जल की बचत, मिट्टी की नमी का संरक्षण और फसलों की गुणवत्ता में सुधार स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है। कुल मिलाकर, पीएमकेएसवाई योजना कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी पहल है, जो जल प्रबंधन को वैज्ञानिक ढंग से प्रोत्साहित करती है और कृषि उत्पादन क्षमता को नई ऊँचाइयों तक ले जाने की दिशा में एक मजबूत कदम है।

मुख्य विशेषताएँ :

"हर खेत को पानी" का लक्ष्य – सभी किसानों के खेतों तक सिंचाई सुविधा पहुँचाना और सिंचाई के दायरे को बढ़ाना।

"पर ड्रॉप मोर क्रॉप" – पानी की एक-एक बूंद का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने हेतु ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी माइक्रो-इरिगेशन तकनीकों को बढ़ावा।

जल संसाधनों का विकास – चेक डैम, तालाब, नाला बंधन, माइक्रो वाटर स्टोरेज, रिचार्ज स्ट्रक्चर आदि का निर्माण।

सिंचाई अवसंरचना सुदृढ़ीकरण – नहरों की मरम्मत, लाइनिंग, लिफ्ट इरिगेशन, पाइपलाइन सिस्टम और जल वितरण नेटवर्क में सुधार।

जल संरक्षण पर जोर – वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण और प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ उपयोग।

फसल उत्पादकता में वृद्धि – बेहतर सिंचाई प्रबंधन के माध्यम से उत्पादन लागत कम कर अधिक उत्पादन सुनिश्चित करना।

किसान आय में वृद्धि – आधुनिक तकनीकों के उपयोग से पानी, श्रम और ऊर्जा की बचत, जिससे लाभ में वृद्धि।

क्लस्टर आधारित विकास – एक ही इलाके में समग्र परियोजनाओं का विकास, जिससे जल प्रबंधन अधिक प्रभावी हो सके।

सहभागी दृष्टिकोण – ग्राम पंचायत, जल उपयोगकर्ता संघ (डब्ल्यू.यू.ए.), किसान समूह और अन्य संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी।

स्मार्ट और डिजिटल मॉनिटरिंग – परियोजनाओ की प्रगति पर निगरानी, जी.आई.एस. और तकनीकी साधनों के माध्यम से प्रभावी मूल्यांकन।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के उद्देश्य:

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना भारत में कृषि उत्पादकता को प्रभावित करने वाली जल-अभाव की समस्याओं और सिंचाई की अक्षमताओं को दूर करने के लिए अत्यंत सूक्ष्मता से तैयार की गई है। इस योजना के उद्देश्य बहुआयामी, स्पष्ट तथा कृषि क्षेत्र की दीर्घकालीन स्थिरता और लचीलापन बढ़ाने पर केंद्रित हैं। नीचे इसके प्रमुख उद्देश्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है:

- **सिंचाई कवरेज का विस्तार** : पीएमकेएसवाई योजना का एक प्रमुख उद्देश्य सभी कृषि भूमि को विश्वसनीय सिंचाई सुविधा से जोड़ना है। योजना के तहत लगभग 28.5 लाख हेक्टेयर भूमि को सिंचाई के दायरे में लाने का लक्ष्य रखा गया है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जो वर्षों से जल उपलब्धता की कमी से जूझते रहे हैं। यह उद्देश्य "हर खेत को पानी" मिशन का मुख्य आधार है, जिसके तहत किसी भी खेत को सिंचाई से वंचित न रहने देना सुनिश्चित है
- **जल उपयोग दक्षता में सुधा**: योजना "पर ड्रॉप–मोर क्रॉप" पहल के माध्यम से पानी के कुशल उपयोग पर बल देती है। ड्रिप, स्प्रिंकलर और माइक्रो-इरिगेशन जैसी आधुनिक तकनीकों को प्रोत्साहित करके हर बूंद पानी का अधिकतम लाभ लेना इसका मूल लक्ष्य है। इससे जल संरक्षण के साथ-साथ फसल की गुणवत्ता और उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि होती है।
- **सतत जल प्रबंधन को बढ़ावा:** पीएमकेएसवाई योजना टिकाऊ जल प्रबंधन पद्धतियों को अपनाने हेतु प्रेरित करती है। इसमें जलग्रहण क्षेत्र विकास, वर्षा जल संचयन, खेत-स्तर पर जल भंडारण संरचनाएँ और भूजल पुनर्भरण को प्रोत्साहन शामिल है। इन उपायों के माध्यम से भूजल स्तर में सुधार, मिट्टी कटाव नियंत्रण और दीर्घकालीन जल उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है।
- **जल संसाधन प्रबंधन का समन्वित एकीकरण**: यह योजना विभिन्न विभागों और क्षेत्रों में चल रहे जल प्रबंधन कार्यक्रमों को एकीकृत करके एक सुदृढ़ और समन्वित कार्यप्रणाली स्थापित करने का प्रयास करती है। जलग्रहण विकास, सिंचाई परियोजनाएँ और जल संरक्षण गतिविधियों को एक साथ जोड़कर एक संतुलित, प्रभावी और समग्र जल प्रबंधन प्रणाली विकसित की जाती है।
- **लंबित सिंचाई परियोजनाओं को तेजी से पूरा कर** : पीएमकेएसवाई योजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (ए.आई.बी.पी.) के अंतर्गत वर्षों से लंबित परियोजनाओं को प्राथमिकता देकर शीघ्र पूरा करना है। इन परियोजनाओं को तेजी से पूरा करने से अधिक भूमि तत्काल सिंचाई के दायरे में आती है, कृषि उत्पादकता बढ़ती है और किसानों की जल आवश्यकताओं को तत्काल राहत मिलती है।
- **जलवायु जोखिमों को कम करना और लचीलापन बढ़ाना:** जलवायु परिवर्तन के बीच पीएमकेएसवाई योजना का उद्देश्य कृषि क्षेत्र को अधिक सक्षम और लचीला बनाना है। सुनिश्चित सिंचाई और जल उपयोग दक्षता से किसान मानसून पर निर्भर नहीं रहते, जिससे सूखे और जलवायु-जनित जोखिमों में कमी आती है। यह दीर्घकालिक कृषि सुरक्षा और स्थिर उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है।
- **ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आजीविका को सुदृढ़ करना**: बेहतर सिंचाई सुविधाओं और बढ़ी हुई उत्पादकता से ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को सीधा लाभ मिलता है। सिंचाई की उपलब्धता से फसल उत्पादन बढ़ता है, जिससे किसानों की आय में सुधार होता है और उनकी आर्थिक स्थिरता मजबूत होती है। यह उद्देश्य ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन के व्यापक लक्ष्य से भी जुड़ा है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के लाभ :प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना ने देश की कृषि प्रणाली में व्यापक सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके लाभ बहुआयामी हैं और सीधे तौर पर किसान, कृषि भूमि, जल संसाधन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

कृषि उत्पादकता में वृद्धि : सुनिश्चित सिंचाई की उपलब्धता से किसानों की फसल उत्पादन क्षमता बढ़ती है। पानी की समय पर उपलब्धता से फसलें बेहतर विकसित होती हैं और कुल उत्पादकता में सुधार होता है।
जल उपयोग दक्षता में सुधार : ड्रिप, स्प्रिंकलर और माइक्रो-इरिगेशन जैसी तकनीकों से कम पानी में अधिक उत्पादन संभव होता है। इससे जल की बचत होती है और खेतों में पानी का समान वितरण सुनिश्चित होता है।
सूखा और जलवायु जोखिमों में कमी : सिंचाई संरचनाओं तथा जल संरक्षण उपायों के कारण किसान मानसून पर निर्भर नहीं रहते। इससे सूखा, अनिश्चित बारिश और जलवायु परिवर्तन के जोखिमों में प्रभावी कमी आती है।
कृषि लागत में कमी : आधुनिक सिंचाई प्रणाली से पानी, श्रम और ऊर्जा की बचत होती है। इससे उत्पादन लागत घटती है और लाभ बढ़ता है।

भूजल स्तर और जल उपलब्धता में सुधार :

वर्षा जल संचयन, चेक डैम और रिचार्ज संरचनाओं से भूजल पुनर्भरण बढ़ता है, जिससे लंबे समय तक जल संसाधनों की उपलब्धता बनी रहती है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) के प्रभावी संचालन के लिए आधुनिक तकनीकी और डिजिटल साधनों का व्यापक उपयोग किया जाता है। जी.आई.एस. आधारित मैपिंग, रिमोट सेंसिंग, ड्रोन सर्वे, और और पारदर्शी बनते हैं। इंटरनेट आधारित स्मार्ट सिंचाई, मिट्टी नमी सेंसर और मोबाइल-एडवाइजरी सिस्टम किसानों को वास्तविक समय में सिंचाई से जुड़ी जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इन तकनीकी हस्तक्षेपों से पानी की बचत, सिंचाई दक्षता में वृद्धि और कृषि उत्पादन में सुधार होता है, जिससे पीएमकेएसवाई योजना एक आधुनिक और वैज्ञानिक जल प्रबंधन कार्यक्रम के रूप में उभरता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद –

राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो (एनबीएसएस एवं एलयूपी) और प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) का संपर्क अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो पूरे देश की मिट्टी, भूमि उपयोग, भू-संसाधन, जलग्रहण क्षेत्रों और कृषि योग्यता का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रदान करता है, जो पीएमकेएसवाई योजना के लिए बुनियादी आधार तैयार करता है। भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो द्वारा तैयार किए गए मृदा-मानचित्र, भूमि क्षमता वर्गीकरण, जल संचयन संभावनाएँ, भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों की पहचान और स्थल-विशिष्ट कृषि सुझाव पीएमकेएसवाई सिंचाई परियोजनाओं को अधिक सटीक, व्यावहारिक और क्षेत्र-विशिष्ट बनाते हैं। इससे जल संसाधनों का बेहतर प्रबंधन, सिंचाई संरचनाओं का उचित स्थान चयन, माइक्रो-इरिगेशन की प्रभावी योजना और वॉटरशेड विकास को वैज्ञानिक दिशा मिलती है। इस प्रकार भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो का सहयोग पीएमकेएसवाई योजना को अधिक प्रभावी, टिकाऊ और परिणाम-केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे किसानों की उत्पादकता और जल उपयोग दक्षता दोनों में उल्लेखनीय सुधार होता है।

निष्कर्ष :

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) भारत के कृषि क्षेत्र में जल प्रबंधन को सुदृढ़ बनाने और किसानों को विश्वसनीय सिंचाई उपलब्ध कराने की दिशा में एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहल है। इस योजना ने सिंचाई अवसंरचना को मजबूत करने, आधुनिक तकनीकों को अपनाने और जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादकता में वृद्धि, जलवायु जोखिमों में कमी, किसानों की आय में सुधार और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक स्थिरता आई है। समग्र रूप से, पीएमकेएसवाई योजना कृषि विकास की रीढ़ को मजबूत करने के साथ-साथ देश में खाद्य सुरक्षा और सतत कृषि प्रणाली स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह योजना न केवल वर्तमान कृषि चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती है, बल्कि भविष्य की जल-संबंधित समस्याओं के लिए एक दूरदर्शी और टिकाऊ मॉडल भी प्रदान करती है।

२२

पांगी का संक्षिप्त विवरणः एक उत्तर-पश्चिम हिमालय क्षेत्र

राजेश कुमार मीणा, विकास जून,अशोक कुमार, जया नि. सूर्या' एवं एन. जी. पाटिल
भा.कृ.अनु.प.- रा.मृ.स.एवं भू.उ.नि.ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र दिल्ली, आई.ए.आर.आई. कैम्पस, नई दिल्ली 110012
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर-440033

भौगोलिक परिचयः

पांगी क्षेत्र, चम्बा जिले के उत्तर की ओर हिमालय की ऊंची, बर्फीली पर्वतो से घिरा हुआ प्राकृतिक सौंदर्य एवं जैव-विविधता वाला क्षेत्र है, विषम भौगोलिक स्थिति, जलवायु, भू-स्थलाकृति एवं पारिस्थितिकी नाजुकता के कारण सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा क्षेत्र है, भौगोलिक स्थिति एवं दुर्गम रास्तों के कारण इसे "**ट्रेकर्स पैराडाइज़"** भी कहा जाता है (चित्र 1)। यह हिमालय की दो उप-श्रृंखलओ के बीच बसा हुआ क्षेत्र है, पांगी के उत्तर में जंसकर धार एवं दक्षिण में पीर पंजाल श्रृंखला है, जिसे पांगी रेज भी कहा जाता है। चंद्रभागा नदी को चेनाब नदी के नाम से भी जाना जाता है, यह पांगी में भुजिण्ड स्थान के समीप प्रवेश करती है तथा पांगी को दो भागो में विभाजित करते हुए संसारी नाला के पास पांगी को छोड़ती है. इसका विस्तार लगभग 80 कि.मी. तक है इसमें कई नाले यथा कारु नाला, सैचू नाला, माहलू नाला, सुराल नाला एवं संसारी नाला गिरते है।

पांगी का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 1600.52 वर्ग कि.मी. है, यहाँ की भूमि जंगल, स्थायी चारागाह और चारागाह भूमि, बंजर और अकृष्य भूमि, कृषि योग्य एवं गैर- कृषि भूमि उपयोग में हैं, पांगी में कुल 106 गाँव है, जो 16 पचायते के अंतर्गत आते है, कूल गावों मे से 60 गाँव आवासित है। गाँव प्रायः चन्द्रभागा नदी के दोनों ओर बसे है

पांगी की कुल जनसंख्या 18868 हैं, जिसका 50.8 एवं 49.2 फीसदी क्रमश पुरुष एवं महिलाए है, यहाँ का जनसंख्या घनत्व एवं साक्षारता दर कमशः 12 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. एवं 624 फीसदी हैं भारत की जनगणना (2011) के अनुसार पागी की 1981 से 2011 दशकों के दौरान जनसंख्या एवं कृषि योग्य भूमि को सारणी 1 में दर्शाया गया है।

चित्र 1:पांगी हिमाचल एक परिचय

सरणी 1:पांगी में जनसख्या एव कृषि योग्य भूमि का विवरण

वर्ष	जनसख्या	कृषि योग्य भूमि (है)
1981	12256	2163
1991	14960	2167
2001	17598	2497
2011	18868	2560

(**स्रोतः** भारत की जनगणना, 2011, ए.आर.ओ. पांगी तहसील)

जलवायु:

यहाँ की जलवायु ठंडी एवं शुष्क है, यहाँ पर बरसात बहुत कम मात्रा में होती है.वर्षण मुख्यतया बर्फ के रूप में होती है, इसका मुख्य कारण उच्ची पहाड़ो की वजह से मानसूनी हवाये इस क्षेत्र तक नहीं पहुँचती है। पांगी का तापमान गर्मियों में प्राय: 25-28 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा नहीं जाता है, तथा सर्दियों में तापमान शून्य से कम 20 डिग्री सेल्सियस तक चला जाता है, पांगी के ऊपरी क्षेत्रों में बर्फ अक्टूबर-नवम्बर से गिरना प्रारम्भहो जाती है, तथा दिसम्बर तक पांगी के निचले क्षेत्रों में गिरने लग जाती है, और मार्च-अप्रैल से पिघलना शुरू हो जाती है, पांगी में लगभग 3 से 15 फीट तक बर्फ गिरती है, सर्दियों मे बर्फीले तूफान भी आते है, ग्लेसियर, एक बर्फ की नदी, ऊँचे पर्वतों के ढलानों पर समय के साथ जमा होती रहती है एवं धीरे-धीरे नीचे की ओर खिसकने लगती है, इसमे से कई प्रकार की धारायों की उत्पति होती है (चित्र 2)।

पांगी की स्थलाकृतिः

- **कम उच्चाई वाले क्षेत्रः** यह क्षेत्र समुद्र तल से आठ हजार की फीट की उचाँई से कम पर है, इसमे लूज एवं धरवास क्षेत्र आते है, यहाँ अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक गर्मी एवं कम बर्फ पड़ती है, यहाँ की भूमि उपजाऊ है, यहाँ खेतो में दो फसल लगाई जाती है। इन क्षेत्रों में सेब की खेती की जाने लगी है।
- **मध्यम उच्चाई बाने क्षेत्रः** किलाड एवं साच-शौर क्षेत्र समुद्र तल से आठ हजार फीट से अधिक उचाई पर है, यहाँ की जमीन पर केवल एक ही फसल सम्भव है, किलाइ के आस-पास सेब के बगीचे लगाये जाने लगे है यहाँ घने जंगल, जंगली अखरोट एवं ठांगी के पेड़ भी पाये जाते है।
- **अधिक उच्चाई वाले क्षेत्रः** ये क्षेत्र 9000-12000 फीट की उचाँई पर स्थित है. इसमे सुराल भट्टोरी, हुड्डान भट्टोरी, परमार भट्टोरी, चस्क, चस्क भट्टोरी, तवान भट्टोरी इत्यादि क्षेत्र आते हैं। इन क्षेत्रो में केवल एक ही फसल उगाई जाती है, भोज पत्र के पेड़ मुख्य वनस्पति एवं उच्चे स्थानो पर चरागाहे स्थित है जैसे हुड्डान भट्टोरी का चरागाह।

चित्र 2: पांगी क्षेत्र में हिमनदः हुड्डान भट्टोरी एवं सच पास

पांगी में अनेक घाटिया हैं, जिनमे सुराल घाटी, सेचू घाटी तथा हुड्डान घाटी प्रमुख है, सुराल घाटी किलाड से 22 कि.मी. एवं धरवास के उत्तरी-पूर्व में 12 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। सेचू घाटी मे कुठाह, हिल्लौर, साहली एवं सेचू गाँव आते हैं, सेचू में ही चस्क नाला, हिल्लू तवान नाला एवं सेचू नाला का संगम स्थल हैं। हुड्डान घाटी, किलाड से 8 कि.मी. पूर्व की ओर एवं माहन् नाला के ऊपर की ओर 13 कि.मी. की दूरी पर स्थित हैं। इस घाटी में हुड्डान भट्टोरी, ईचवास, टकवास, टून्डरु एवं सेरी भटवास गाँव आते है।

प्राकृतिक संसाधनः

- **भू-संरचना एवं खनिज पदार्थः** यहाँ पर फाइलाइट, लाईमस्टोन, निस, ग्रेनाइट एवं स्लेट-क्वार्टजाइट अधिक मात्रा में पाई जाने वाली चट्टान है, लोहा एवं अश्वक क्रमशः कुलाल एवं धरवास क्षेत्र में काफी मात्रा में पाये जाने वाले खनिज पदार्थ है। पांगी के धरवास गाँव का अश्वक युक्त। तिलमिल पानी का प्रसिद्ध जल सोत्र टी.बी के मरीजो के लिए स्वास्थ-वर्धक माना जाता है।
- **जन श्रोतः** यहाँ पर वर्षण बर्फ के रूप में होता है, मार्च-अप्रैल से बर्फ पिघलना शुरू हो जाती है. जिससे कई प्रकार की धारायों, नालों, झरनों, इत्यादि में पानी का प्रवाह बना रहता है, पांगी में सिचाई का क्षेत्र कम है, यहाँ पर पानी की धारायों से कुहल द्वारा पानी को खेतों तक पहुंचाया जाता है। जलवायु परिवर्तन के कारण जल-श्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा एवं पानी के बहाव असर हो रहा है।
- **मिटटी**: यहाँ की मिटटी पथरीली बलुई रेत, बलुई दोमट एवं दोमट प्रकार की है, जिसमे विभिन्न मात्रा में छोटे-बड़े पत्थर पाये जाते है, यहाँ की मृदाओं में कार्बनिक अंश की मात्रा अधिक होती है. तथा इनकी गहराई उथली से लेकर गहरी है, तथा जल निकास अचित है। बर्फ पिघलते समय एवं बरसात के दिनों में, भूस्खलन एवं मृदा क्षरण गभीर समस्या है.जलवायु परिवर्तन के यहाँ की समस्याओं ओर भी बढोतरी होने वाली है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाया जाता है एवं सड्डी-गली खाद को खेतों में डाला जाता है।
- **चरागाहा:** गर्मियों के दिनों में जानवरों को उच्चे क्षेत्रों की ढलानदार एवं हरे-भरे चरागाहों में चराने के लिए ले जाते है, जिन्हे अधवारियां (पशु चराने के स्थान पर दूसरा घर और खेती के लिए जमीन) कहा जाता है, जहाँ पर लोग अपने पशुओं के साथ रहते है। चरागाहे पर उगी घास पोष्टिक होती है। कही कही पर भेड़ बकरियों के लिए विशेष चरागाहे भी होते हैं, जिनमे चराने के लिए जंगल विभाग से अनुमति लेनी पड़ती है। जलवायु परिवर्तन के कारण इन चरागाहो की घास की उपलब्धता कम हो रही है।
- **वनसम्पदाः** यहाँ की वन सम्प्रदा धरतालीय ऊंचाई, ढलान एवं मिट्टी के प्रकार की प्रकृति पर निर्भर है, पांगी घाटी मे चंद्रभागा के आस-पास की ढलानों पर 2700 से 2800 मीटर की उचाई पर देवदार के घने जंगल हैं, तथा अधिक ऊंचाई पर देवदार के पेडो की संख्या कम एवं छोटे हो जाते हैं. भोजपत्र के जंगल अधिक ऊंचाई स्थान पर पाये जाते हैं, जंगली अखरोट, चील, ठांगी वन, वैदाह, सफेदा, पोपलर, ब्रेकन फर्न (बारन) इत्यादि यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पति है।
- **वनपशु-पक्षीः** वनपक्षियों में चोकर, पहाड़ी मोर, हिमालयन वूडपेकर, सफेद गिद्ध, कोऐ, मोनाल, अनेक प्रकार की

तितलियों, मधुमखी, इत्यादि पाये जाते है। यहाँ पर तेंदुआ (स्नो लेपार्ड), काला भालु, भूरा भालु, रॉस (मस्क डियर), पिज (जंगली भेड), मही (जंगली बकरी), वनबलान, रंघ (नर जंगली भेड़), कर्थ (जंगली बकरा), इत्यादि पाये जाने वाले जंगली पशु है।

पांगी अर्थवव्यस्था:

- **सरकारी नौकरी एवं मजदूरी वेतन:** सरकारी नौकरी एवं दैनिक मजदूरी इस क्षेत्र के लोगो की आय का स्त्रोत है, वर्तमान में अनेक सरकारी विभागों एवं विकास गतिविधियों के कारण लोगो को प्रतिदिन मजदूरी से आमदनी हो रही है।
- **कृषिः** यहाँ पर पारंपरिक जैविक खेती जीवन निर्वाह के लिए की जाती है, पंगवाल एवं भोट जनजाति की जीविका मुख्यत खेती एवं पशु पालन पर निर्भर है। यहाँ की विषम भू-स्थलाकृति के कारण, पांगी के कुल भू भाग का लगभग डेढ़-दो फीसदी ही कृषि योग्य है तथा कृषि जोते भी छोटी है। सर्दी के मौसम के बाद अप्रैल माह में खेती के कार्य किये जाते हैं. कभी-कभी अप्रैल माह में भी बर्फ पड़ी रहती है. अतः बर्फ पर राख या मिट्टी इत्यादि भी डालनी पड़ती है, ताकि जल्दी से खेत खाली हो जाये। खेत संकरे एवं सीदी नुमा होते है (चित्र 3)। खेतो की मेटबंदी पत्थरों से की जाती है, ताकि पानी के प्रभाव से खेतों की मिट्टी बचाया जा सके, अन्यथा मेढ़ डह जाती है।

चित्र 3: पांगी के तंग और सीडी नुमा खेतः सेरी भटवास एवं करयुनी सेरी

फसल बोने से पहले एक या दो बार चुर बैल से हल चलाकर जुताई की जाती है। अप्रैल माह के मध्य तक बुआई की जाती है। यहाँ पर एक ही (खरीफ की फसल ली जाती है, परन्तु कही कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में दो (खरीफ एवं रबी) फसले ली जाती है। गेहूँ, जौ (एलो), मक्का, चीणा, कोद्र, उड़द, इत्यादि यहाँ कि स्थानीय फसले है, आलू, मटर, सेब, फूलनू या भरेस (बकव्हीट), भभरी (अमरेन्थस), इत्यादि अधिक ठण्डे इलाको में लगाई जाने वाली नकदी फसले है (चित्र 4)। फुलगोभी, पत्तागोभी, टमाटर, दाने (राजमा, कुल्थ, फ्रेंचबीन, इत्यादि) भी लगाई जाती है। कई स्थानों पर गेहूँ एवं जौ की फसल की बुवाई अक्टूबर-नवम्बर में की जाती है तथा जून-जुलाई में कटाई की जाती है. जिसके बाद कम अवधि वाली फसल जैसे फूलन या भरेस की बुवाई की जाती है। उत्पादन एवं उत्पादकता कम होने के कारण, फसलोत्पादन से खाद्यानों की पूर्ति नहीं हो पाती है, इसलिए सरकार की तरफ से यहाँ पर सस्ती दरो पर अनाज उपलब्ध करवाया जाता है। गेहू एवं जौ के दानो से शराब भी बनाई जाती है।

- **बागवानी:** यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी कई तरह की बागवानी फसलों के लिए उपयुक्त है. यहाँ हाल ही के दिनों में सेब की खेती का क्षेत्र बढ़ रहा है, यहाँ के सेब बहुत रसीले एवं स्वादिष्ट होते हैं, परतु विपणन एवं माल-परिवहन की सुविधा नहीं होने के कारण उचित दाम नहीं मिल पाते हैं, फलदार वृक्षों में सेब, जगली अखरोट (वालनट), ठांगी (हेजलनट), चिलगोजा, चिल, खुबानी, इत्यादि पाये जाते हैं, यहाँ पर कीवी जैसे फलो की खेती की भी संभावना है।
- **पशुपालन**: यहाँ की जनजाति सीमित सख्या में पशु रखते है, क्योकि सर्दियों में चारे की कमी होती है। यहाँ पशुधन में गाय, बैल (चुर), भेड, बकरी, देसी गाय, चुरी गाय, खच्चर-गधे और याक पाये जाते है (चित्र 5)। चूरी गाय, देसी गाय एवं याक (चूर) का क्रॉस है. चूरी गाय अधिक दूध देती है। यहाँ की जलवायु जर्सी गाय के लिए भी उपयुक्त है. याक उची चरागाहो एवं भट्टोरियों में पाया जाता है, चूर बैल को कृषि कार्यों में काम में लिया जाता है। यहाँ पर मुर्गी पालन स्वयं के खाने के लिए की जाती हैं पशुओं के दूध एवं बने उत्पाद को बेचने से आमदनी होती है, भेड़ की ऊन एवं बकरी के बालों से कंबल, चट्टाई, इत्यादि बनाई जाती है।

चित्र 4: पांगी क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसलः गेहूं,मटर, भरेस एवं सेब.

- **प्राकृतिक उपज एवं जंगली जड़ी-बूटियाँ:** यहाँ की प्राकृतिक उपज जगली अखरोट, ठांगी, धूप, पतीश (कडवा), पतीश (मीठा), वनचोक, किणास, सालम पजा, बनक्कशा, कालाजीरा, गुच्छी (मशरूम), फर्न, वन ककडी, शिलाजीत, इत्यादि है, जिनमे से कुछ चीजों को अनुमति लेकर एकत्रित किया जाता है. इस क्षेत्र में औषधिय पोधों की खेती की अपार सम्भावना है।
- **पर्यटन व्यवसायः** प्राकृतिक सुंदरता के कारण यह पर्यटकों को आकर्षित करता है, जिससे होटल, होम-स्टे, इत्यादि से भी आमदनी हो रही है। यहाँ पर कृषि पर्यटन को बढ़ाव देने की जरूरत है।

निष्कर्षः

पांगी क्षेत्र पारिस्थितिकी नाजुकता एवं जैव-विविधता के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण क्षेत्र है, इस क्षेत्र की दुर्गम भौगोलिक स्थिति, विषम जलवायु, सीधी-टलान, कम कृषि जोत, कृषि-तकनीकी की कम पहुँच, भूमि क्षरण, आधारभूत संरचना की कमी, इत्यादि यहाँ के विकास मे अवरोधक है, इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनो के सरक्षण एवं संवर्धन की संभावनाओं पर विशेष बल देने की जरूरत है. जिसमे वैज्ञानिक एवं तकनीकी शोध आधारित सुझावओं को अपनाये जाने की आवश्यकता है, जिसके फलस्वरूप न सिर्फ इस क्षेत्रों में खाद्यान उत्पादन की संभावनाओं को विकसित करने में आसानी होगी अपितु जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों को जैव-विविधता, जल श्रोतों, भूमि संसाधनों, वनो, चरगाहों, कृषि तथा जीविका पर कम किया जा सके।

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch